फोकस इण्डिया
प्रकाशन
अप्रैल, 2018

जलवायु हितैषी या कारपोरेट हितैषी खेती : इसके प्रभाव

सहयोग
रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफटुंग,
दक्षिण एशिया

जलवायु हितैषी या कारपोरेट हितैषी खेती :

इसके प्रभाव

FOCUS ON THE GLOBAL SOUTH

जलवायु हितैषी या कारपोरेट हितैषी खेती : इसके प्रभाव

लेखक : **सरिंग केन्जी शेरपा**

प्रकाशन : **अप्रैल,** 2018

द्वारा प्रकाशित : **फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ**
और इस पुस्तिका की प्रतियां पाने के लिए संपर्क
33-डी, तीसरी मंजिल, विजय मंडल एनक्लेव
डी.डी.ए. एस.एफ.एस. फ्लैट्स, कालू सराय, हौज खास
नई दिल्ली-110016
टेलीफोन : 91-11-26563588, 41049021
http://focusweb.org/

सहयोग : **रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफटुंग, साउथ एशिया**
सेंटर फोर इंटरनेशनल कॉ-ऑपरेशन
सी-15, दूसरी मंजिल, सफदरजंग डेवलपमेंट एरिया मार्केट,
नई दिल्ली-110016
www.rosalux-southasia.org

"Sponsored by the Rosa Luxemburg Foundation e.V. with funds of the Federal Ministry for Economic Cooperation and Development of the Federal Republic of Germany."
"Gefördert durch die Rosa-Luxemburg-Stiftung e.V. aus Mitteln des Bundesministerium für wirtschaftliche Zusammenarbeit und Entwicklung der Bundesrepublik Deutschland"

आवरण फोटो साभार : सुरेश भाई देसाई (स्थानीय कम लागत वाली बायोडाइजेस्टर, एक प्राकृतिक बायोपेस्टेसाइड)

डिजाइन एवं मुद्रण : **पुलशॉप,** 9810213737

इस पुस्तिका की विषयवस्तु का इस शर्त के साथ बिना-रोक टोक के पुनर्मुद्रण और उद्धृत किया जा सकता है कि इस स्रोत का उल्लेख किया जाए। फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ उस प्रकाशित सामग्री को पाने पर आभारी रहेगा, जिसमें इस रिपोर्ट का उल्लेख किया गया है।

यह एक अभियान प्रकाशन है और निजी वितरण के लिए है!

सरिंग केन्जी शेरपा, स्पेन स्थित आई.ई. विश्वविद्यालय में बी.ए. की छात्रा है जिसने फोक्स ऑन द ग्लोबल साउथ के अफ़सर जाफ़री के सहयोग से यह शोध किया है।

विषय सूची

संक्षिप्त शब्द		4
पूर्वकथन		6
परिचय		9
1.	जलवायु हितैषी कृषि	12
2.	भारत में जलवायु हितैषी कृषि : एक और हरित क्रांति?	16
3.	जलवायु हितैषी कृषि के अंतर्गत बढ़ावा दी जाने वाली पद्धतियाँ	21
	संलग्नक : 1	41
4.	जलवायु हितैषी कृषि के असर	42
5.	विकल्प : कृषि पारिस्थितिकी	46
	संलग्नक : 2	48

संक्षिप्त शब्द

सी.डी.एम.	–	स्वच्छ विकास का तरीका (Clean Development Mechanism)
सी.एस.ए.	–	जलवायु हितैषी खेती (Climate Smart Agriculture)
सी.सी.ए.एफ.एस.	–	जलवायु परिवर्तन, कृषि और खाद्य सुरक्षा (Climate Change, Agriculture and Food Security)
सी.एस.वी.	–	जलवायु हितैषी गाँव (Climate Smart Villages)
सी.जी.ए.आई.आर.	–	अंतरराष्ट्रीय कृषि अनुसंधान पर सलाहकार समूह (Consultative Group on International Agriculture Research)
सी.आई.एम.एम.वाई.टी.	–	अंतरराष्ट्रीय मक्का और गेहूँ सुधार केन्द्र (International Maize and Wheat Improvement Centre)
डी.ए.आर.ई.	–	कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा विभाग (Department of Agricultural Research and Education)
ई.पी.टी.आर.आई.	–	पर्यावरण रक्षा प्रशिक्षण एवं अनुसंधान संस्थान (Environment Protection Training and Research Institute)
एफ.ए.ओ.	–	खाद्य एवं कृषि संगठन (Food and Agricultural Organisation)
जी.ए.सी.एस.ए.	–	जलवायु हितैषी कृषि हेतु वैश्विक गठबंधन (Global Alliance for Climate Smart Agriculture)
आई.ए.आर.आई.	–	भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (Indian Agriculture Research Institute)
आई.सी.ए.आर.	–	भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (Indian Council of Agricultural Research)
इफ्को-टोक्यो	–	भारतीय कृषक उर्वरक सहकारी संघ-टोक्यो जनरल इंश्योरेंस (Indian Farmer's Fertilizer's Cooperative & Tokio General Insurance)
आई.सी.आर.आई.एस.ए.टी.	–	अर्ध-शुष्क ऊष्णकटिबंधीय क्षेत्र हेतु अंतरराष्ट्रीय फसल अनुसंधान संस्थान (International Crops Research Institute for the Semi-Arid Tropics)

के.व्ही.के.	–	कृषि विज्ञान केन्द्र
जे.आई.	–	संयुक्त रूप से लागू करना (Joint Implementation)
एल.ए.पी.ए.	–	स्थानीय अनुकूलन हेतु कार्ययोजना (Local Adaptation Plan of Action)
एन.ए.एफ.सी.सी.	–	जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन हेतु राष्ट्रीय कोष (National Adaptation Fund for Climate Change)
एन.आई.टी.आई.	–	नीति आयोग (National Institute for Transforming India) Ayog
एन.सी.सी.सी.	–	जलवायु परिवर्तन हेतु राष्ट्रीय परिषद् (National Council for Climate Change)
एन.एम.एस.ए.	–	टिकाऊ खेती हेतु राष्ट्रीय मिशन (National Mission for Sustainable Agriculture)
ई.पी.टी.आर.आई.	–	पर्यावरण संरक्षण प्रशिक्षण एवं अनुसंधान संस्थान (Environment Protection Training and Research Institute)
सी.सी.ए.एफ.एस.	–	जलवायु परिवर्तन कृषि और खाद्य सुरक्षा पर अनुसंधान कार्यक्रम (Research Programme on Climate Change, Agriculture and Food Security)
एस.ए.पी.सी.सी.	–	जलवायु परिवर्तन हेतु राज्य कार्य योजनाएँ (State Action Plans for Climate Change)
एन.ए.पी.सी.सी.	–	जलवायु परिवर्तन हेतु राष्ट्रीय कार्य योजना (National Action Plan on Climate change)
एन.आई.सी.आर.ए.	–	जलवायु सक्षम खेती हेतु राष्ट्रीय नवोन्मेष (Nation Innovation of Climate Resilient Agriculture)
एन.सी.सी.एस.डी.	–	जलवायु परिवर्तन टिकाऊ विकास एवं जननेतृत्व हेतु राष्ट्रीय परिषद् (National Council for Climate Change, Sustainable Development and Public Leadership)
डब्ल्यू.बी.सी.एस.डी.	–	टिकाऊ विकास हेतु विश्व व्यापार परिषद् (World Business Council for Sustainable Development)
आर.ई.डी.डी.	–	(Reducing Emissions from Deforestation and Forest Degradation)
आर.ई.डी.डी. प्लस	–	Reducing Emissions from Deforestation and Forest Degradation Plus (REDD+)

पूर्वकथन

भारत में और सारी दुनिया में ही खेती पर आधारित अधिकतर लोगों में और मूलनिवासियों की आबादी में जलवायु परिवर्तन एक बहुत भयानक सच्चाई के तौर पर पैदा हुआ है और उसने लोगों की जिंदगियों को बुरी तरह बदल डाला है। उसके असर से ये सभी लोग भूख, गरीबी और हर तरह की वंचना के भीषण शिकार हुए हैं। यहाँ तक कि जिसे सबसे अच्छा समय कहा जा सकता है, उसमें भी करोड़ों लोग हाशिये पर और ज़रूरत से बहुत कम आमदनी पर किसी तरह जीते रहे हैं। मौसमी बदलावों ने बहुतों को भूखे रहने पर, अपनी जमीनें छोड़ देने या बेच देने पर या शहरी इलाकों में काम की तलाश में गाँव छोड़ देने पर मजबूर किया है। सालों साल सूखा, अनियमित और कम बारिश, सख़्त मौसम, कीड़ों के प्रकोप, फसलों के पूरी तरह तबाह हो जाने को झेलते रहने के बाद ये किसान अपने सबसे खराब दिनों से अपने-अपने स्तर पर छोटी-छोटी रणनीतियों को अपना कर जलवायु परिवर्तन से लड़ते रहे हैं। जाहिर है, जलवायु परिवर्तन के असर से निबटने के लिये सिंचाई की नई और बेहतर तकनीकें, पपरंपरागत बीजों की ओर वापसी, जल संचयन, ड्रिप सिंचाई, बहुफसलीय और मिश्रित खेती, मौसमी सूचनाओं के आधार पर खेती की बेहतर योजना बनाना, जैवविविधता, पारिस्थिकी तंत्र का संरक्षण और सौर ऊर्जा का अधिक उपयोग जैसे उपाय शामिल हैं।

इस बारे में काफी शोध हुआ है और इसके अनेक सबूत हैं कि किसानों को केन्द्र में रखकर खेती के ऐसे तौर-तरीके अपनाना जो पारिस्थितिकी के लिये भी उचित हों, काफी प्रभावशाली रहे हैं। यही नहीं इससे ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी लाने में भी काफी महत्त्वपूर्ण मदद मिल सकती है। इनमें ऐसी चीजों का इस्तेमाल कम होता है जो जैव-ईंधन पर आधारित हैं। साथ ही, खेती की वो तकनीकें जो हरित क्रांति के दौरान अपनाई गईं थीं और ज़्यादातर ईंधन इस्तेमाल करने वाले उर्वरकों और रसायनों पर केंद्रित थीं, उनसे जो कार्बन की मात्रा फैलती थी उसकी तुलना में ये तकनीकें बेहतर होती हैं। इन्हीं वजहों से खेती और पारिस्थितिकी के तालमेल से कार्बन को जमीन या मिट्टी के भीतर ही बेहतर तरह से थामा जा सकता है और जलवायु परिवर्तन से होने वाले खतरों की आशंकाओं को कम किया जा सकता है। खेती और पारिस्थितिकी के तालमेल से बनने वाली तकनीकें कुदरत की दी हुई सौगातों के बेहतरीन इस्तेमाल की संभावनाएं दिखाती हैं। इनसे खेती में ज़रूरी पोषक तत्वों का पुनर्उत्पादन होता है। नाइट्रोजन की मात्रा का निर्धारण और मिट्टी को फिर से ताक़तवर बनाया जा सकता है। ये तकनीकें कीड़ों के कुदरती इलाज़ के लिये, पानी की बचत, ज़मीन के संरक्षण और मिट्टी की उत्पादकता को बरकरार रखने के साथ खेती की जैवविविधता को कायम रखने और खेती में पर्यावरण या इंसानी सेहत के लिये नुकसानदायक चीजों (कीटनाशक और उर्वरक) के इस्तेमाल को कम करते है।

इसके उलट, हम देखते हैं कि ऐसी खेती को बढ़ावा दिया जा रहा है जिससे ज़्यादा कार्बन निकलता है। ये खेती कॉर्पोरेट कंपनियों के लिये ज़्यादा फायदेमंद है। लेकिन साथ ही, जलवायु परिवर्तन और खाद्य असुरक्षा के खतरे भी इसमें ज़्यादा हैं। ऐसी खेती के अंदर सूखे, खारे या बर्फीले इलाकों के लिये अनुवांशिकीय रूप से बदली गई (जीएम) फसलें, औद्योगिक कृषि आधारित ईंधन, औद्योगिक जैव-ऊर्जा और जमीन से छेड़छाड़, कृत्रिम जैविकी, नैनोटेक्नोलॉजी आदि का इस्तेमाल किया जाता है। इन तकनीकों को आरईडीडी और आरईडीडी-प्लस जैसे कार्यक्रमों में शामिल किया जाता है जिसका समर्थन विश्व बैंक और यहाँ तक कि एफएओ (संयुक्त राष्ट्र संघ का खाद्य एवं कृषि संगठन) भी करता है। इन कार्यक्रमों में जलवायु हितैषी कृषि (Climate Smart Agriculture), ब्लू कार्बन[1] और जैवविविधता का दूसरी जगह संतुलन करना शामिल हैं।

[1] मैन्ग्रोव के जंगल, खारे पानी के दलदल आदि अपने अंदर कार्बन के वृहद भंडार रखते हैं, इसे ब्लू कार्बन कहा जाता है।

जंगलों, मिट्टी और तटीय वनस्पति के लिये नई कार्बन तकनीकों का विकास करना स्थिति को और अधिक बिगाड़ देगा और इससे नये वित्तीय बुलबुले तैयार होंगे, जो नये वित्तीय संकट की आशंका बढ़ाएँगे। ये सारी नई कार्बन तकनीकें बड़े पैमाने पर होने वाली एकफसलीय खेती, उच्च तकनीकी में निवेश और रासायनिक अवयवों पर आधारित रहती हैं जिनके लिये बड़ी पूँजी और केन्द्रीय नियंत्रण की ज़रूरत होती है। ये झूठे समाधान जलवायु परिवर्तन के खतरों से निबटने के लिये नहीं बनाये जाते हैं बल्कि उनका मक़सद कॉर्पोरेट घरानों के लिये लगातार मुनाफ़ा तैयार करना होता है। इससे भी बुरा ये है कि वे प्रकृति के कार्यों का वस्तुकरण करते हैं और जंगल, मिट्टी, झीलों, नदियाँ, मैन्ग्रोव और समुद्र आदि पारिस्थितिकी तंत्रों को नष्ट करते हैं जिन पर धरती का जीवन निर्भर करता है। जलवायु परिवर्तन के ये झूठे बाजार-आधारित समाधान स्थानीय समुदायों से उनके जमीन और प्राकृतिक संसाधनों को दूर करने के और अधिक तरीके बना रहे हैं। तकनीकी समाधानों के इस नये दौर ने महिलाओं को और अधिक हाशिये पर पहुँचाया है और महिलाओं के खुदके व परिवार के लिये रोजी-रोटी कमाने की संभावनाओं को भी बेहद प्रभावित किया है। सीडीएम, जीएम, आरईडीडी, सीएसए जैसे झूठे और बाजार आधारित काम का खुलासा करना बेहद ज़रूरी हो गया है जो कि पर्यावरण और दुनिया के जलवायु तंत्र का अच्छे से ज़्यादा बुरा ही करेंगे। ये सभी न तो उत्सर्जन को कम करेंगे न ही उन सामाजिक समस्याओं को जिनसे जलवायु परिवर्तन हो रहा है। ये सभी कॉर्पोरेट कंपनियों को जलवायु परिवर्तन से लड़ने के नाम पर मुनाफ़ा मुहैया कराएँगे, जो कि व्यापार का नियम है।

जलवायु हितैषी खेती (सीएसए) भी ऐसा ही एक झूठा समाधान है जिसे सरकारें और कॉर्पोरेट मिलकर इस तरह प्रचारित कर रहे हैं मानो यह खेती में पर्यावरण परिवर्तन से जुड़े सभी मसलों का कोई जादुई हल हो। दरअसल सीएसए और कुछ नहीं बल्कि पहले से चली आ रही हरित क्रांति के समय की औद्योगिक पद्धतियों व तौर-तरीकों का ही विस्तार और नया नामकरण है। याद रहे कि हरित क्रांति के वक़्त अपनाई गई पद्धतियों ने वैश्विक जलवायु परिवर्तन की आज की समस्याओं में बहुत बड़ा योगदान दिया है। सीएसए का सबसे प्रमुख छलावा ही ये है कि यह औद्योगिक खेती के नकारात्मक असरों और परंपरागत व टिकाऊ किसानी वाली खेती में कोई फर्क ही नहीं करता है। जबकि परांपरागत टिकाऊ किसानी वाली खेती गरीबी उन्मूलन, भूख और जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक असरों को कम करने में सहायक रही है।

जलवायु हितैषी खेती अपने आप में एक पूरा पैकेज है जिसमें तमाम तरह की ''जलवायु हितैषी'' चीजें शामिल हैं। इस पैकेज में ''जलवायु हितैषी कर्ज'' भी हैं। जलवायु हितैषी खेती तथाकथित नई तकनीकों पर निर्भरता बढ़ायेगी जो कि इस पैकेज का हिस्सा है। इसमें पारंपरिक और सही मायने में किसानी के अनुकूल तकनीकों और स्थानीय बीजों की किस्मों के महत्त्व को पूरी तरह नज़रअंदाज़ किया गया है।

जीएम बीजों को या जमीन के अधिग्रहण को प्रोत्साहित करने वाली ये कंपनियाँ पहले से ही दावा करती हैं कि इनकी गतिविधियों का सामाजिक असर किसानों और समुदायों पर जलवायु के हिसाब से बहुत अच्छा हो रहा है। दुनिया की सबसे बड़ी उर्वरक निर्माता कंपनी यारा, जीएम बीज बनाने वाली सिंजेन्टा, मॅक्डॉनाल्ड्स और वॉलमार्ट जैसे सभी इस ''जलवायु हितैषी गुट'' में जगह पा चुके हैं। इस तरह की जलवायु हितैषी खेती हमें एक ऐसे मुक़ाम पर पहुँचाएगी जहाँ खेती में सबसे भयंकर सामाजिक और पर्यावरणीय असर डालने वाले अपराधी तत्व प्रतिष्ठा पाएँगे। कृषि व्यवसाय में सक्रिय ऐसे ताक़तवर कॉर्पोरेट्स की एक और रणनीति जलवायु हितैषी कृषि हेतु वैश्विक गठबंधन (जीएसीएसए) भी लगती है जो वैसे ही औद्योगिक खेती को बढ़ावा दे रही है जैसे हरित क्रांति के वक़्त दिया गया था।

कृषि-पारिस्थितिकी के अनुकूल की जाने वाली खेती के समृद्ध भारतीय तौर-तरीकों के बावजूद हमने देखा कि टिकाऊ खेती के लिये राष्ट्रीय मिशन (एनएमएसए) में भी जलवायु हितैषी खेती की समझ की झलक दिखाई देती है। इस मिशन का प्रमुख

उद्देश्य खेती की पैदावार बढ़ाना है। इसके लिये वे जैवतकनीक का भी नियंत्रित इस्तेमाल कर फसलों और पशुधन की बेहतर किस्में तैयार करना चाहते हैं। टिकाऊ खेती के लिये राष्ट्रीय मिशन एनएमएसए जलवायु परिवर्तन के लिये राष्ट्रीय परियोजना के तहत बने आठ तकनीकी मिशनों में से एक है। इसे भारत सरकार ने जलवायु परिवर्तन संबंधी मुद्दों पर काम करने के लिये 2008 में प्रारंभ किया था। एनएमएसए के ज़रिये जलवायु हितैषी खेती का जो भी गलत ख़याल है वो जलवायु परिवर्तन पर राज्यों की कार्ययोजना में विभिन्न राज्यों में पहुँच जाता है। इससे हमें शक करने पर मजबूर होना पड़ता है कि खेती के लिये कम कार्बन उत्सर्जन वाले तरीके प्रचारित करने के पीछे दरअसल उनका मक़सद क्या है। मिसाल के तौर पर मणिपुर योजना में ''आधुनिक वैज्ञानिक खेती'' की बात कही गई है, मध्यप्रदेश में ''जैवतकनीक का अधिक इस्तेमाल कर खेती का आधुनिकीकरण'' प्रस्तावित है, पश्चिम बंगाल और राजस्थान दोनों राज्य ''बिना जुताई की खेती'' का प्रस्ताव करते हैं, वहीं राजस्थान में ऐसी खेती की संभावनाएँ तलाशने की बात है ''जहाँ कार्बन की कमी वाली जमीन में कार्बन जमा किया जा सके और जैवविविधता का अधिक इस्तेमाल हो सके।'' अनेक राज्य की योजनाओं में कृषि ईंधन के बागान भी शामिल हैं।

उद्योगों द्वारा प्रस्तावित किये जा रहे और सरकारों द्वारा बिना जाँच-परख अपनाये जा रहे ये तकनीकी-आधारित समाधान वस्तुतः मुनाफ़ा कमाने के औज़ार ही हैं। जो हमें असल में चाहिए वो दरअसल ऐसी तकनीक तक हमारी निःशुल्क पहुँच है जिसे छोटे किसानों द्वारा आसानी से अपनाया जा सके, अपने अनुकूल बनाया जा सके और वे ज़रूरत के मुताबिक़ उसे सुधार भी सकें। ऐसी तकनीक जिसके साथ पेटेंट और बौद्धिक संपदा की तलवारों का डर किसानों के सिर पर न लटका रहे। खेती में तकनीकी उन्नति का जो मॉडल हम देख रहे हैं वो तो यह बिल्कुल नहीं है। ऐसा भी नहीं कि अर्जित वैज्ञानिक ज्ञान और परंपरागत ज्ञान के समन्वय के कामयाब उदाहरण मौजूद न हों, लेकिन सरकारों की उन्हें आगे बढ़ाने में या बड़े पैमाने पर लागू करने में कोई दिलचस्पी नहीं है। उनका झुकाव उद्योगों द्वारा ''जलवायु हितैषी'' के नाम पर दिये जा रहे झूठे समाधानों के पैकेज में है। आज ये बहुत ज़रूरी है कि जलवायु की सेवाओं के इस तरह वित्तीयकरण और झूठे समाधानों को आगे बढ़ाने पर बहस हो, विचार-विमर्श हो और अध्ययन हो। इसी के साथ सारी दुनिया में स्थानीय लोग स्थानीय ऊर्जा संप्रभुता, कृषि पारिस्थितिकी और खाद्य संप्रभुता जैसे अनेक वास्तविक समाधान पेश कर रहे हैं। इन समाधानों से मौजूदा पैदावार और खपत के रूझान तेजी से बदल रहे हैं और जल, जंगल, ज़मीन एवं अन्य संसाधनों पर पुनः नियंत्रण पाया जा रहा है। इन उपायों के द्वारा लोग अपनी संप्रभुता को वापस पा रहे हैं।

फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ ने रोज़ा लक्समबर्ग स्टिफटुंग (आरएलएस) के सहयोग से ऐसी ही एक कोशिश के तहत दिल्ली में दो दिन के एक गोलमेज़ संवाद को आयोजित किया था। ''वित्तीयकरण एवं जलवायु संकट के झूठे समाधान : खेती में व्यवहारिक विकल्प क्या हो सकता है - किसानी की कृषि पारिस्थितिकी या जलवायु हितैषी खेती'' के विषय पर यह संवाद 12 और 13 अक्टूबर 2017 को आयोजित किया गया था। इसमें जलवायु हितैषी खेती, खेती आधारित ईंधन, आरईडीडी-प्लस जैसे झूठे समाधानों पर विस्तार से चर्चा की गई। इस बैठक का उद्देश्य इन झूठे समाधानों का पर्दाफाश करना और जलवायु न्याय तथा जलवायु परिवर्तन पर कृषि पारिस्थितिकी, खाद्य संप्रभुता और नवीनीकरण योग्य ऊर्जा से जुड़े वास्तविक समाधानों पर समालोचनात्मक विचार-विमर्श करना और अपनी समझ बढ़ाना था। जलवायु हितैषी खेती के मिथकों और वास्तविकताओं पर आधारित ये पुस्तिका उस संवाद का हिस्सा थी। कार्यक्रम की एक संक्षिप्त रूपरेखा परिशिष्ट-1 में दी गई है, विस्तृत रिपोर्ट फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ की वेबसाइट पर उपलब्ध है।

अफ़सर जाफ़री

परिचय

जलवायु परिवर्तन को अगर आज की दुनिया के सामने मौजूद सबसे बड़ी समस्या न भी माना जाये जो भी यह सबसे बड़ी समस्याओं में से एक तो निस्संदेह ही है। ये समस्या इंसानों की बनाई हुई है, जो मुख्य रूप से कोयला, गैस और तेल जैसे जैव-ईंधन को जलाने की वजह से पैदा हुई है। इन जैव-ईंधनों के जलने से मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, कार्बन डाय ऑक्साइड जैसी गर्मी को सोखने वाली गैसों की वातावरण में मात्रा बढ़ा दी है। इससे वैश्विक तामपान बढ़ गया है जो अनियमित मौसम के हालात, कभी बाढ़-कभी सूखा और बारिश के समय और मात्रा में अप्रत्याशित बदलाव का कारण है। पेरिस जलवायु समझौते ने लम्बे समय में तापमान नियंत्रण का लक्ष्य औद्योगिकीकरण के पहले के तापमान से 1.50° की सीमा में रखा है।[2] 1.50° से अधिक तापमान बढ़ने का अर्थ भयंकर विनाश होगा। उसके असर हमारी अनुकूलन की क्षमता से बाहर होंगे। तापमान बढ़ने के परिणाम दुनिया की मूँगा-चट्टानों का पूरी तरह नष्ट हो जाना, समुद्र के जल स्तर का बढ़ जाना और कुछ छोटे द्वीप-राष्ट्रों का डूब जाना, अधिकांश क्षेत्रों में तेज लपट चलना वहीं कुछ क्षेत्रों में अनियंत्रित बारिश से बाढ़ जैसे हालात, खाद्य फसलों के नुकसान से संकट जैसे होंगे।[3]

हमारे विश्व नेताओं का रवैया समस्या की विकरालता को देखते हुए बमुश्किल ही उचित कहा जा सकता है। अगर मौजूदा पेरिस समझौते की नीतियों का पालन किया भी जाये तो भी तापमान 1.50° से ज़्यादा बढ़ेगा। पर्यावरण के क्षेत्र में कार्य कर रहे कार्यकर्ताओं का साफ कहना है कि ''पेरिस समझौते के अनुसार चलने से हम इस धरती को जलता हुआ देखेंगे''। उनके मुताबिक़ तापमान 4 से 5 डिग्री तक बढ़ सकता है।[4] इस बारे में सामूहिक समझ और चिंता की कमी का एक कारण यह भी है कि भले ही जलवायु परिवर्तन एक वैश्विक मुद्दा हो पर इसके असर अलग-अलग देशों, आबादियों और आर्थिक क्षेत्रों पर अलग-अलग तरह से पड़ते हैं। विकासशील देश और छोटे-द्वीप, विकासशील राज्य विकसित देशों की तुलना में जलवायु परिवर्तन के खतरों के सम्मुख अधिक कमज़ोर होते हैं।[5] दरअसल इन देशों में आबादी के बड़े हिस्से की आजीविका खेती पर निर्भर है। मौसम में तीव्र बदलाव फसलों के लिये अक्सर नुकसानदेह होते हैं और वही दुनिया भर के करोड़ों किसानों की आजिविका का जरिया और खाद्य सुरक्षा का सहारा होता है। एक अनुमान के मुताबिक़ प्रति 1 डिग्री तापमान बढ़ने पर भारत में गेहूँ की पैदावार 40 से 50 लाख टन कम हो जायेगी। कीटों का प्रकोप बढ़ जायेगा, नये कीट विकसित हो जाएँगे और अन्य अनेक फसलों की भी उत्पादकता में कमी आयेगी।[6] मछलीपालन पर भी इसका प्रतिकूल असर होगा।[7] भारत के कुछ इलाकों में लगातार तीन साल से सूखे का प्रकोप रहा है और हर बार फसल खराब होने के साथ खुदकुशी करने वाले किसानों की संख्या बढ़ी है।[8]

---

[2] *https://www.nature.com/articles/nclimate3096.epdf?author_access_token=RexikyN5vxy3ugz-flUY7NRgN0jAjWel9jnR3ZoTv0OZlUAyrJekwZ4HMq3DtbGkVcyLY2h9bp31usCfC_u2h2g9dVxNGp7x5wx9RnALdQbHs8mUKSwWRZf1ZPgp9tzH*

[3] *https://www.earth-syst-dynam-discuss.net/6/2447/2015/esdd-6-2447-2015.html*

[4] *https://www.democracynow.org/2015/12/1/the_paris_agreement_will_see_the*

[5] *http://www.un.org/ga/president/62/ThematicDebates/ccact/vulnbackgrounder1July.pdf*

[6] *http://assets.wwfindia.org/downloads/impacts_of_climate_change_on_growth_and_yield_of_rice_and_wheat_in_the_upper_ganga_basin.pdf*

[7] *http://www.indiawaterportal.org/news/climate-change-and-fisheries-perspectives-small-scale-fishing-communities-india-measures*

[8] *https://thewire.in/149054/drought-tamil-nadu-farmers-deaths/*

यद्यपि खेती ही जलवायु परिवर्तन के प्रति सबसे ज़्यादा संवेदनशील और कमज़ोर क्षेत्र है, फिर भी बड़े कृषि-उद्योगों और तेल पर आश्रित सामग्री से बने हरित क्रांति और औद्योगिक खेती के पश्चिम में विकसित हुए मॉडल जलवायु परिवर्तन के बड़े कारक हैं। एक आंकलन के अनुसार लगभग 43 प्रतिशत से 57 प्रतिशत ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन वैश्विक औद्योगिक खाद्य उत्पादन तंत्र के द्वारा किया जाता है। इसका कारण उर्वरकों और नाइट्रस ऑक्साइड (उर्वरकों में प्रयुक्त) जैसे रसायनों का प्रयोग किया जाना है। ये रसायन 21वीं सदी में ओज़ोन परत में छेद करने वाले सबसे प्रमुख तत्वों में से एक है। कृषि क्षेत्र में कृत्रिम उर्वरकों का इस्तेमाल मनुष्य द्वारा उत्सर्जित कुल नाइट्रस ऑक्साइड के 56 से 81 प्रतिशत तक हिस्से के उत्सर्जन के लिये जिम्मेदार है, ये भी एक प्रमुख ग्रीन हाउस गैस है।

खेती और जलवायु परिवर्तन के बीच अत्यंत महत्त्वपूर्ण संबंध होते हुए भी जलवायु संबंधी चर्चाओं में कृषि क्षेत्र को अधिकांशतः नज़रअंदाज़ ही किया जाता रहा है। इसी कारण औद्योगिक कृषि मॉडल के जलवायु परिवर्तन में योगदान को भी नीति-निर्माताओं द्वारा बहुत अधिक चिन्हित नहीं किया गया। यह बात इस तथ्य से स्पष्ट होती है कि ओज़ोन परत में छेद करने वाले तत्वों में प्रमुख होते हुए भी नाइट्रस ऑक्साइड का उत्सर्जन मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल[9] द्वारा नियंत्रित नहीं है। इस वजह से कृषि व्यवसाय में संलग्न कंपनियों को उर्वरकों के उत्पादन और वितरण की खुली छूट मिल जाती है।

हालाँकि औद्योगिक कृषि से जलवायु परिवर्तन का संकट बढ़ता है लेकिन छोटे स्तर पर पारिस्थितिकी के अनुकूल की जाने वाली खेती से जलवायु परिवर्तन के संकट में कमी लाने की बहुत संभावनाएँ हैं। कम लागत और बिना रासायनिक उर्वरकों या कीटनाशकों के बिना की जाने वाली कृषि-पारिस्थितिकी खेती का मॉडल ज़मीन में कार्बन को ज़ब्त रखने में मददगार होता है और जैसा कि किसानों के आंदोलन La Via Campesina (ला वाया कैंपेसिना, लैटिन अमेरिका) का प्रसिद्ध नारा कहता है ''किसानों के अनुकूल की जाने वाली कृषि पारिस्थितिकी धरती को ठंडक पहुँचाती है।'' ये अपने आप में ही जलवायु परिवर्तन का एक बेहतरीन समाधान प्रस्तुत करता है। किसानी वाले बीज बरसों की प्रक्रिया के बाद कुदरती तरीके से विकसित हुए हैं और उनकी अलग-अलग किस्में अलग-अलग जलवायु वाली परिस्थितियों के लिये अनुकूल हैं। इसी कारण, खेती न सिर्फ़ जलवायु परिवर्तन के अनुसार अनुकूलित हो सकती है बल्कि जलवायु परिवर्तन के असर को कम भी कर सकती है बशर्ते सही राजनीतिक इच्छाशक्ति साथ हो। फिर भी यूएनएफसीसीसी में किसानी वाली खेती और कृषि-पारिस्थितिकी पर कोई ख़ास ध्यान नहीं दिया गया है और किसी भी आधिकारिक जलवायु समझौते में खेती औपचारिक रूप से शामिल नहीं है।

हालाँकि पिछले कुछ सालों में जलवायु हितैषी खेती के सुझाव ने जलवायु समाधानों का ध्यान खेती की ओर खींचा है। जलवायु हितैषी खेती का ज़ोर इस तरह की खेती पर है जो जलवायु परिवर्तन का समाधान है परंतु साथ ही बढ़ती हुई वैश्विक आबादी को खाद्य सुरक्षा देना भी है। अनेक हितधारकों को साथ में लेकर जीएसीएसए एक वैश्विक मंच के रूप में स्थापित किया गया और सरकारें, कॉर्पोरेट्स और गैर-सरकारी संगठन जलवायु हितैषी खेती को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से इसमें शामिल हुए हैं। इस संगठन की सदस्यता किसी भी संस्था के लिये खुली है बशर्ते वह इसके आधारभूत दस्तावेज से सहमत हो।[10] परंतु, इस स्वयंसेवी संगठन का नेतृत्व उन्हीं जलवायु के अपराधियों और प्रदूषकों के हाथों में है, जिन्हें Exxon's of Agriculture[11] कहा गया है और जिन्होंने जलवायु परिवर्तन की समस्या को कई गुना बढ़ाया है। यह संगठन अस्पष्ट और विरोधाभासी

---

[9] ओजॉन परत को नुकसान पहुँचाने वाले पदार्थों पर मॉंट्रियल प्रोटोकॉल वियना सम्मेलन की एक अंतरराष्ट्रीय संधि है जो ओजॉन परत की सुरक्षा के लिए ऐसा प्रावधान करती है कि जिन पदार्थों के उत्पादन से ओजॉन परत को नुकसान पहुँच रहा है, उनका उत्पादन चरणबद्ध तरीके से बंद किया जाए।

[10] *http://www.fao.org/gacsa/members/en/*

[11] *https://www.grain.org/article/entries/5280-media-release-the-exxons-of-agriculture*

तकनीकी को आगे बढ़ाता है और कार्बन ट्रेडिंग की मुनाफ़ाखोरी से जुड़ा हुआ है। यही कारण इस संगठन की बढ़ती हुई आलोचनाओं का वजह भी हैं।[12] सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि खेती के औद्योगिक मॉडल के जलवायु परिवर्तन में योगदान इस संगठन की चर्चाओं में नहीं हैं, साथ ही, कृत्रिम रसायनों को रोकने के लिये भी कोई ठोस चर्चाएँ नहीं है। समझना है कि ऐसा क्यों है?

यह पुस्तिका भारत में जलवायु हितैषी खेती का एक अवलोकन और छान-बीन प्रस्तुत करती है और दिखाती है कि इस तरह के समाधानों को किस तरह सरकारी और निजी संस्थाओं के एक पूरे तंत्र द्वारा लागू किया जा रहा है। यह पुस्तिका यह चर्चा करती है कि ये समाधान झूठे हैं या कारगर, क्या वे सच में पर्यावरण को बचाते हैं, जलवायु परिवर्तन को कम करते हैं या छोटी जोत वाले किसानों का सहयोग करते हैं, जिनके भले के नाम पर यह सब लागू किये जा रहे हैं।

[12] *http://www.climatesmartagconcerns.info/open-letter.html*

1. जलवायु हितैषी कृषि

जलवायु हितैषी कृषि के विचार को एफएओ द्वारा 2010 में विकसित किया गया था, इसे तीन प्रमुख लक्ष्यों के साथ खेती के लिये एक दृष्टिकोण की तरह समझाया जाता है :

1. खेती की पैदावार और आमदनी में टिकाऊ बढ़ोत्तरी करना
2. जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलन और प्रतिरोध क्षमता विकसित करना
3. ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन कम करना और/या खत्म करना

ऊपर लिखे इन लक्ष्यों के अलावा, जलवायु हितैषी कृषि ऐसी नीतियाँ, तकनीकें और वित्तीय मशीनरी बनाना चाहती है जिससे एक ऐसा पर्यावरण बनाया जा सके जिसमें जलवायु हितैषी कृषि की जा सके।

इन नीतियों को ऊपर से नीचे की ओर लागू किया जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र जैसी विशाल संस्थाओं द्वारा विकासशील देशों के करोड़ों किसानों के लिये कृषि नीतियों और अवधारणाओं की सिफारिशें करना कोई नई बात नहीं है। उनकी नीतियाँ और उसके पीछे आने वाला बहुत सा पैसा अक्सर ही ज़्यादा पैदावार और खुशहाली के आकर्षक वादों से ढँका होता हैं। साठ के दशक की हरित क्रांति भी ऐसी ही एक घटना थी जिसके खेती की विविधता और मिट्टी की उर्वरता में कमी की सूरत में पर्यावरण को नुकसान हुआ और बढ़ते हुए कर्ज़ और किसानों की आत्महत्या की सूरत में सामाजिक नुकसान जैसे बहुत ही घातक ''अनचाहे नतीजे'' सामने आये। दुनियाभर के किसान अभी भी एकफसलीय खेती के साथ अधिक उर्वरक और कीटनाशक के उपयोग के नतीजे भुगत रहे हैं, इस सब को हरित क्रांति में बढ़ावा दिया गया था।

जलवायु हितैषी खेती कितनी कारगर है और इसके क्या परिणाम होंगे यह जानने के लिये बारीक जाँच-पड़ताल करना ज़रूरी है। इसके साथ ही यह भी जानना होगा कि जो संस्थाएँ और कॉर्पोरेशन इसे बढ़ावा दे रहे हैं उनके हित क्या हैं, इस सब के लिये पैसा कहाँ से आ रहा है और जलवायु हितैषी खेती किन नीतियों पर आधारित है? हक़ीक़त में जलवायु हितैषी खेती का फ़ायदा किसे होगा? और किनकी आवाजें इस सब से बाहर ही रह जाएँगी? आखिर में, ये बहुत ज़रूरी है कि खेती की उन तकनीकों का जिन्हें जलवायु हितैषी खेती बढ़ावा दे रही है, इसलिये अध्ययन किया जाये कि क्या ये तकनीकें पर्यावरण संरक्षण के लक्ष्यों को पूरा करने में कारगर हैं या क्या इन्हें लागू किया जाना छोटी जोत वाले किसानों के हक़ में होगा?

1.1 ज़रूरी हितधारक : वही खिलाड़ी, वही खेल?

1.1.1 बड़े खिलाड़ी : जलवायु हितैषी कृषि की संस्थाएँ, कॉर्पोरेशन और निवेशक –

- ***सीसीएएफएस/सीजीएआईआर (CCAFS/CGAIR)***

  सीजीएआईआर कृषि-विज्ञान एवं नवाचार पर केन्द्रित एक वैश्विक शोध साझेदारी है।[13] इस संगठन के 15 शोध केन्द्र हैं जिन्हें सीजीआईएआर अंतरराष्ट्रीय कृषि अनुसंधान एवं शोध केन्द्रों का संघ कहा जाता

[13] *http://www.cgiar.org/about-us/*

है। इनमें से एक केन्द्र भारत में है जिसे आईसीआरआईएसएटी के नाम से जाना जाता है। इसकी स्थापना 1971 में रॉकफेलर फॉउण्डेशन के पूरे विश्व में कृषि केन्द्रों की स्थापना एक स्थानीय सचिवालय के अंतर्गत करने के प्रस्ताव के अंतर्गत हुई थी। हरित क्रांति के जन्मदाता भी रॉकफेलर फॉउण्डेशन, फोर्ड फॉउण्डेशन और मैक्सिको की सरकार ही थे।

सीजीएआईआर को भारत, अमेरिका, नीदरलैंड, जापान, यूनाइटेड किण्गडम आदि कई देशों की सरकारों के साथ विश्व बैंक जैसी अंतरराष्ट्रीय संस्थाएँ एफएओ, यूएनडीपी, एडीबी जैसी संयुक्त राष्ट्र की संस्थाएँ और निजी संस्थाएँ जैसे फोर्ड फाउण्डेशन, रॉकफेलर फॉउण्डेशन, बिल एण्ड मेलिण्डा गेट्स फॉउण्डेशन, सिन्जेन्टा फॉउण्डेशन आदि पैसा देती हैं। सीजीएआईआर के अंतर्गत जलवायु हितैषी कृषि को 'जलवायु परिवर्तन, कृषि और खाद्य सुरक्षा' (सीसीएएफएस) नाम के वैश्विक एकीकरण कार्यक्रम के द्वारा बढ़ावा दिया जाता है।[14] सीसीएएफएस के प्रमुख शोध कार्यक्रम हैं – जलवायु हितैषी कृषि की प्राथमिकतायें और नीतियाँ जिससे निवेश के लिये अच्छा माहौल बना कर जलवायु हितैषी कृषि के स्तर को बढ़ाया जा सके, जलवायु हितैषी तकनीकें और तंत्र, कम उत्सर्जन वाले विकास कार्यक्रम, जलवायु सेवाएँ और सुरक्षा तथा लैंगिक और सामाजिक समावेश।[15] उनकी वेबसाइट के अनुसार ''सीसीएएफस जलवायु हितैषी नीतियों को बढ़ावा देता है जिससे खेती को खाद्य सुरक्षा, जलवायु परिवर्तन का अनुकूलन और कम उत्सर्जन करने के तीन लक्ष्यों के लिये सक्षम बनाया जा सके।[16]

- ***जलवायु हितैषी गाँव***

जिन तरीकों से सीसीएएफएस जलवायु हितैषी कृषि को बढ़ावा दे रही है उनमें से एक तरीका जलवायु हितैषी गाँव नाम (सीएसव्ही) का कार्यक्रम भी है। इसकी शुरूआत २०११ में हुई थी। इसके अंतर्गत सरकारों, राष्ट्रीय संस्थानों के साथ-साथ निजी क्षेत्र के सहयोग से दुनियाभर में १५ जलवायु हितैषी गाँव नमूने के तौर पर तैयार किये जाने थे। इन्हें ''जलवायु हितैषी गाँव'' कहा गया क्योंकि इनमें पैदावार बढ़ाने के साथ-साथ ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन कम करने और अधिक से अधिक कार्बन को ज़ब्त करने की तकनीकों पर अमल किया जाना था, जिससे जलवायु परिवर्तन और खाद्य सुरक्षा के मुद्दों से एक साथ निबटा जा सके।

दक्षिण एशिया में जलवायु हितैषी गाँवों को खुल्ना, बरिसाल, सिल्हट (बांग्लादेश) रूपनदेही, महोत्तरी, नवलपारसी, डंग, बरिसाल, गोरखा (नेपाल) और हरियाणा, बिहार, पंजाब, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक (भारत)

---

[14] The CGAIR portfolio 2017- 2022, which provides the center's overall strategic direction and research priorities have been developed into 2 interlinked clusters: First, bring the Agri- food system which consists of different sectors of agriculture such as 1. fish, 2. livestock, 3.maize, 4. rice, 5. Forestry trees and agroforestry 6. Wheat, 7. roots tubers and bananas, within which they will seek to increase productivity, sustainability, nutrition and resilience at large scare. The second cluster involves 4 global integration programs, which will work together with the first cluster. The four programs are: 1. Agriculture for Nutrition and Health, 2. Climate change, agriculture and food security, 3. Policies, institutions and markets, 4. Water, land and ecosystems.

[15] https://ccafs.cgiar.org/research

[16] http://www.cgiar.org/about-us/our-programs/cgiar-research-program-on-climate-change-agriculture-and-food-security-2017-202/

में लागू किया गया था। इन जगहों को खास तौर पर दो वजहों से चुना गया था - 1. ये जगहें अधिक जोख़िम वाली हैं और यहाँ जलवायु परिवर्तन का असर अधिक है और रहेगा। 2. इन सभी जगहों पर सीसीएएफएस की सहयोगी संस्थाएँ स्थानीय लोगों से पहले से जुड़ी हुई थीं, इन्हीं संस्थाओं को जलवायु हितैषी गाँवों को अमल में लाना था।[17]

1.1.2 जीएसीएसए : जलवायु हितैषी कृषि के लिये वैश्विक गठबंधन (GACSA)

जीएसीएसए दुनिया का पहला और अकेला संस्थान है जो खेती में जलवायु परिवर्तन के मुद्दे से दो-चार होने का दावा करता है। एफएओ के अंतर्गत, जीएसीएसए की स्थापना का उद्देश्य यह था कि सरकारों और संगठनों (गैर-सरकारी और निजी) को ''बदलाव के लिये साझेदारी'' क़ायम करने और जानकारी, ज्ञान, विशेषज्ञता और संसाधनों को साझा कर जलवायु हितैषी खेती जैसे लक्ष्यों को पूरा करने के लिये नवाचार किया जा सके। जलवायु परिवर्तन या टिकाऊपन की पैरवी करने से दूर इस संस्थान के सदस्यों में यारा, कारगिल और टायसन जैसी सबसे ज़्यादा प्रदूषण फैलाने वाली बहु-राष्ट्रीय कंपनियाँ शामिल हैं। इन कंपनियों द्वारा पर्यावरण को पहुँचाया गया नुकसान नीदरलैंड्स, वियतनाम या कोलंबिया जैसे समूचे देशों से भी ज़्यादा है।[18] जैसा कि नीचे बने चित्र में देखा जा सकता है, जीएसीएसए के सदस्यों में उर्वरक कंपनियों और कृषि-उद्योग आधारित कंपनियों का ही दबदबा है। खेती और जलवायु परिवर्तन की नीति तय करने में उर्वरक कंपनियों की भूमिका वैसी ही हास्यास्पद है जैसे पोषण-युक्त खाने की नीति तय करने

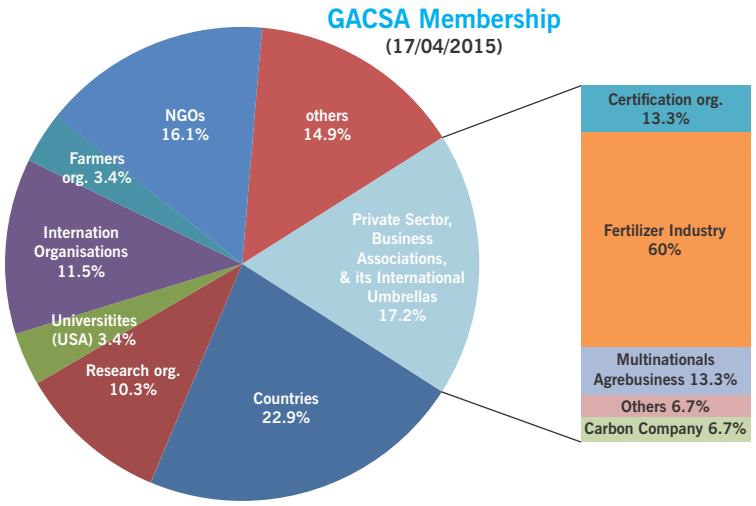

Source : Samon, Kartini. Presentation on CSA : Climate or Corporate Smart Agriculture. GRAIN, 2017

[17] https://ccafs.cgiar.org/climate-smart-villages#.WV0PO9OGMb0

[18] https://www.theguardian.com/sustainable-business/2015/dec/07/food-climate-footprint-cargill-tyson-yara-netherlands

में मॅक्डॉनाल्ड या बर्गर किंग का होना। जीएसीएसए कृषि-उद्योगों और सरकारों के बीच सार्वजनिक-निजी साझेदारी को बढ़ावा देती है पर बिना सही नियमों और निगरानी के इस प्रकार की कोई भी ''बदलाव के लिये साझेदारी'' उन विकासशील देशों के किसानों के लिये तबाही बन सकती है जो इस नीति को तय करने में शामिल तक नहीं हैं।

1.1.3 टिकाऊ विकास के लिये विश्व व्यापार समिति (WBCSD)

डब्ल्यूसीएसडी एक अन्य संगठन है जिसने विश्व बैंक, जीएसीएसए और सीसीएएफएस के साथ साझेदारी में जलवायु हितैषी कृषि को अपना प्रमुख कार्यक्रमों में से एक बनाया है। २०० से अधिक सदस्य कंपनियों के साथ इस संगठन का मिशन ''टिकाऊ दुनिया की ओर प्रगति को तेज़ करने के लिये अधिक टिकाऊ व्यापार को अधिक सफल व्यापार बनाना'' है। इस संगठन के जलवायु हितैषी कृषि कार्यक्रम बड़े स्तर पर दुनिया के पांच इलाकों - भारत, उत्तरी अमेरिका, आसियान और घाना और पश्चिम अफ्रीका - में आज़माया जा रहा है। इसके सदस्यों में बेयर, डानोन, ड्यूपॉन्ट, केलॉग्स, मोन्सान्टो, नेसले, बीपी, सिन्जैंटा, डीओडब्ल्यू, टाटा, यारा, वेल आदि कंपनियाँ शामिल हैं।

1.2 GACSA की पड़ताल : कॉर्पोरेट्स के मुक्त-व्यापार को आगे बढ़ाने के लिये जलवायु गठबंधन

यह बात साफ है कि जीएसीएसए में कॉर्पोरेट्स की बड़ी तादाद है और वे जलवायु हितैषी कृषि को बढ़ावा देने वाले इन सभी संस्थानों पर असर रखते हैं। इस कारण यह समझना सरल है कि औद्योगिक कृषि मॉडल के जलवायु पर होने वाले असर को इनके द्वारा सामने नहीं लाया जाता। जलवायु हितैषी कृषि की धारणाओं का इस्तेमाल कर बहु-राष्ट्रीय कंपनियाँ आसानी से अपने आपको पर्यावरण-संरक्षक और टिकाऊ बता सकती हैं। इससे भी बढ़कर, ये विशाल कृषि उद्योग जलवायु हितैषी कृषि के नाम पर विकासशील देशों में आसानी से अपनी वस्तु और सेवाओं के लिये बाज़ार बना रहे हैं। जलवायु हितैषी कृषि और इसके लक्ष्यों के नाम पर बड़े कृषि-उद्योग लगातार अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं और सरकारों के साथ जीएसीएसए या किसी और मंच पर साझेदारी कर रहे हैं। जैसे - यारा और वियतनाम की सरकार।[19] मोन्सांटो, सिन्ज़ैंटा, यारा, बेयर और तंजानिया की सरकार।[20] बेयर, कारगिल, डीओडब्ल्यू और इण्डोनेशिया की सरकार आदि।[21] इस तरह की साझेदारियों ने ऐसी घुसपैठ की है कि इन बहू-राष्ट्रीय कंपनियों को देश के पूरे खाद्य उत्पादों की मूल्य-श्रृंखला का ही ज़िम्मा दे दिया गया है। इस तरह की साझेदारियों का प्रचार छोटी जोत वाले किसानों के लिये ''अवसर'' की तरह किया जाता है पर हकीक़त में ये बड़े कृषि-उद्योगों के लिये छोटी जोत वाले किसानों और उनके खेतों का फायदा उठाने और शोषण करने का मौका है। इन छोटे किसानों की बात इन नीतियों को बनाते वक़्त पूरी तरह अनसुनी कर दी जाती हैं।

---

[19] *https://www.grain.org/article/entries/5270-the-exxons-of-agriculture*

[20] *http://www.sagcot.com/our-partners/sagcot-partners/Mb0*

[21] *http://www.pisagro.org/*

2. भारत में जलवायु हितैषी कृषि : एक और हरित क्रांति?

जलवायु हितैषी कृषि की मुख्य बातों को भारत में सीजीएआईआर, सीसीएएफएस के द्वारा जलवायु हितैषी गाँव नाम के कार्यक्रम के द्वारा लाया गया है। ये अधिकांशतः राज्य सरकारों के साथ मिलकर लागू किये गये हैं। वर्तमान में जलवायु हितैषी कृषि पंजाब, उड़ीसा, कर्नाटक, हरियाणा और बिहार में चल रही है। हालाँकि इसे देश के और राज्यों में आगे बढ़ाने की योजनाएँ भी हैं। टिकाऊ खेती के लिये राष्ट्रीय मिशन के अनुच्छेद 3.9 में लिखा है - ''राज्य सरकारें जाने-माने गैर सरकारी संगठनों को समूह/गाँव के विकास की योजना लागू करने में शामिल कर सकती हैं बशर्ते उस इलाके में कम सरकारी संसाधन उपलब्ध हों। गैर-सरकारी संगठन को चुनने की प्रक्रिया पारदर्शी होनी चाहिए। देखरेख और निगरानी का कार्य विभाग द्वारा स्पष्ट प्रक्रिया के अनुसार होना चाहिए।''[22] इसीलिये कुछ राज्यों में जलवायु हितैषी कृषि के सुझाव और अमल, दोनों ही औरों की तुलना में ज़्यादा प्रभावी हैं।

वैसे तो भारत जीएसीएसए का सदस्य नहीं है पर 2015 में इस्ताम्बुल में हुई जी-20 के कृषि मंत्रियों की बैठक में अमेरिका के तत्कालीन कृषि मंत्री टॉम विल्सैक ने भारत को ''जलवायु हितैषी गठबंधन'' में शामिल होने का निमंत्रण दिया था और भारत के कृषि मंत्री श्री राधा मोहन सिंह को पूरे कार्यक्रम तथा कार्ययोजना समझाते हुए पत्र लिखने का प्रस्ताव दिया था।[23] 11 अगस्त 2016 को 'भारतीय हरित कृषि कार्यक्रम' पर एक राष्ट्रीय कार्यशाला का आयोजन कृषि और कृषक कल्याण मंत्रालय, वन एवं पर्यावरण मंत्रालय और एफएओ द्वारा संयुक्त रूप से किया गया था। उस कार्यशाला में कृषि मंत्री श्री राधा मोहन सिंह ने कहा कि ''भारत सरकार ने जलवायु हितैषी कृषि, ज़मीन के टिकाऊ इस्तेमाल और देखरेख, जैव-पैदावार, स्थानीय और परंपरागत जानकारी का इस्तेमाल जलवायु परिवर्तन की समस्या से निबटने के लिये कई सारी योजनाएँ तैयार की हैं।[24] इस तरह भारत भले ही औपचारिक रूप से जीएसीएसए का सदस्य न हो, सरकार पूरी तरह इसके समर्थन में है और अपनी नीचे लिखी नीतियों, संस्थाओं और अलग-अलग तरीकों से इसे बढ़ावा दे रही है :

2.1 राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर नीतियाँ

जलवायु हितैषी कृषि को भारत की राष्ट्रीय और राज्य स्तर की नीतियों में शामिल किया जा रहा है। 2008 में विकसित जलवायु परिवर्तन के लिये राष्ट्रीय कार्ययोजना (एनएपीसीसी) में 8 राष्ट्रीय मिशन शामिल हैं। इन मिशनों में से 2 जलवायु हितैषी कृषि और इसके लक्ष्यों से जुड़े हैं। इनमें से पहला हरित भारत के लिये राष्ट्रीय मिशन है। यह जंगलों को बढ़ाकर कार्बन को डुबाने का लक्ष्य रखता है और जलवायु हितैषी कृषि के कम उत्सर्जन वाले लक्ष्य से मिलता है। दूसरा, एनएमएसए है जो भारतीय खेती को जलवायु परिवर्तन के सामने और ज़्यादा सक्षम बनाना चाहता है। इसके लिये सरकार नई तरह की फसलें, खास कर गर्मी सह सकने वाली फसलों[25] को चिन्हित और विकसित करना चाहती है। सीजीएआईआर द्वारा इसे राष्ट्रीय स्तर पर भारत की ''जलवायु हितैषी'' कोशिशें कहा गया है।

---

[22] *http://www.hortharyana.gov.in/documents/guidelines_norms/nmsaguideline.pdf*

[23] *http://dare.nic.in/node/184*

[24] *http://agricoop.nic.in/sites/default/files/e-bulletine%2CJu Cly-Sept%2C2016_0.pdf*

[25] ताप प्रतिरोधी पौधे आनुवांशिक तौर पर तब्दीली कर इस तरह बनाये जाते हैं कि वे अधिक तापमान पर भी अच्छी फसल दे सके। *http://www.moef.nic.in/modules/about-the-ministry/CCD/NAP_E.pdf*

सभी राज्यों पर भी एनएपीसीसी के अनुसार जलवायु परिवर्तन के लिये राज्य की कार्ययोजना (एसएपीसीसी) तैयार करने की ज़िम्मदारी है। इससे राज्यों को जलवायु परिवर्तन के मामलों में अपनी ख़ुद की कमज़ोरियों के अनुसार कार्ययोजना बनाने का मौका मिलता है। किसी राज्य के अपना एसएपीसीसी का मसौदा तैयार कर लेने पर उसकी समीक्षा जलवायु परिवर्तन के लिये राष्ट्रीय विशेषज्ञ समिति करेगी और अपने सुझाव और टिप्पणियाँ देगी। राज्यों के द्वारा यह सब कर लेने के बाद एसएपीसीसी को जलवायु परिवर्तन के लिये राष्ट्रीय परिचालन समिति द्वारा मंजूर किया जाता है। एसएपीसीसी को पैसा देने के लिये सरकार ने वर्ष 2015-16 और 2016-17 के लिये 350 करोड़ रुपयों के बजट प्रावधान से जलवायु परिवर्तन के लिये राष्ट्रीय अनुकूलन कोष बनाया है। वर्ष 2017-18 के लिये लगभग 181.5 करोड़ रुपये की ज़रूरत पड़ने का अनुमान है।[26] हालाँकि ये पैसा उन्हीं राज्यों को दिया जाता है जो कमज़ोर हैं और पैसा नहीं जुटा सकते। राज्य सरकारों को एसएपीसीसी के अमल के लिये अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं से साझेदारी करने पर कोई रोक-टोक नहीं है। इसी तरीके से सीजीएआईआर और सीसीएएफएस हरियाणा, तेलंगाना, पंजाब जैसी राज्यों की सरकारों के साथ साझेदारी कर जलवायु हितैषी गाँव की योजना लागू कर रहे हैं।

2.2 क्या स्थानीय अनुकूलन के लिये कार्ययोजना (एलएपीए) की ज़रूरत है?

सीजीआईएआर और सीसीएएफएस ने 2015 में माना कि राज्य स्तर और स्थानीय स्तर पर जलवायु परिवर्तन के अनुकूल में फर्क को कम करने के लिये एक स्थानीय अनुकूलन के लिये कार्ययोजना की ज़रूरत होगी।[27] यहाँ स्थानीय का मतलब गाँव समितियाँ और स्थानीय संस्थाएँ है। उनके अनुसार स्थानीय अनुकूलन के लिये कार्ययोजना एनएपीसीसी और एसएपीसीसी की कोशिशों को स्थानीय स्तर तक ले जायेगी, जो कि अब तक नहीं हो रहा था। सीजीआईएआर, सीसीएएफएस का दावा है एलएपीए के ज़रिये जलवायु हितैषी गाँवों को भी प्रमुखता मिलेगी क्योंकि जलवायु हितैषी गाँव के लक्ष्य भी एनएपीसीसी के जैसे ही हैं। एलएपीए का अमल ज़्यादा जगह देकर सीजीआईएआर, सीसीएएफएस के लिये जलवायु हितैषी गाँवों को लागू करना और आसान बनायेगा। पहले से ही एलएपीए के उन हिस्सों में जहाँ मुनाफ़ा कमाने की गुंजाइश है वहाँ निजी क्षेत्र को शामिल किया जा रहा है। जैसे ''परंपरागत जमीन समतल करने के तरीकों की जगह लेज़र से जमीन समतल करना जिससे किसानों और समतल करने वालों के साथ जलवायु को भी फ़ायदा होगा।'' यह सब पूरे देश में जलवायु हितैषी गाँवों के बहुत तेज अमल और कंपनियों द्वारा किसानों व संसाधनों के शोषण की ओर बढ़ सकता है, जबकि इसके नतीजे अभी साफ नहीं हैं।

2.3 भारत में जलवायु हितैषी कृषि को लागू करने वाले सरकारी और गैर-सरकारी संगठन

2.3.1 अर्ध-शुष्क ऊष्णकटिबंधीय क्षेत्र हेतु अंतरराष्ट्रीय फसल अनुसंधान संस्थान (आईसीआरआईएसएटी) (ICRISAT)

अर्ध-शुष्क ऊष्णकटिबंधीय क्षेत्र हेतु अंतरराष्ट्रीय फसल अनुसंधान संस्थान सीजीएआईआर का ही एक अंतरराष्ट्रीय कृषि अनुसंधान केन्द्र (आईएआरसी) है। इसका मुख्यालय हैदराबाद में है। पिछले कुछ दशकों में, आईसीआरआईएसटी निजी क्षेत्र के साथ साझेदारी में हाईब्रिड बीज और जीएम फसलें विकसित कर रहा है, जो कृषि-उद्योगों और बाजार की ज़रूरतों के हिसाब से किये जाते हैं। इसके साझेदारों में बेयर,

[26] *http://pib.nic.in/newsite/PrintRelease.aspx?relid=124326*

[27] *https://cgspace.cgiar.org/bitstream/handle/10568/68326/LAPA.pdf?sequence=1&isAllowed=y*

डीओडब्ल्यू, टाटा केमिकल्स, अदवांता इण्डिया, ड्यूपोन्ट, पायोनियर जैसी कई बीज कंपनियाँ और कृषि-उद्योग शामिल हैं। कार्यक्रम में शामिल होने और आईएआरसी द्वारा विकसित बीजों को प्राप्त करने के लिये ये कंपनियाँ प्रति फसल सालाना फीस (5000 अमेरिकी डॉलर, 2.50 लाख रुपये वर्ष 2004 में) देती हैं।[28] यह स्पष्ट है कि आईसीआरआईएसएटी बड़े कृषि-उद्योगों के पक्ष में काम करता है जो उसकी फीस अदा कर सकें और बदले में विकसित वस्तुएँ लें जो इसी तरह की बड़ी निजी कंपनियों को फायदा पहुँचाते हैं।

आईसीआरआईएसएटी भारत में कीड़े/कीट/सूखा प्रतिरोधी और हाइब्रिड फसलों की पैदावार करने और उन्हें प्रसारित करने वाला प्रमुख संस्थान है, इसी कारण इस पर जलवायु हितैषी कृषि को बढ़ावा देने का ठप्पा लगा हुआ है। प्रोफेसर एम.एस. स्वामीनाथन के अगुवाई में हुई हरित क्रांति में भी आईसीआरआईएसएटी का अहम योगदान था। हालाँकि हरित क्रांति के मिट्टी में नमक बढ़ाने, मिट्टी की गुणवत्ता में गिरावट, जल-स्त्रोतों में पानी की कमी और किसानों की आत्महत्या जैसे कई बुरे नतीजे रहे हैं, उसके बाद भी आईसीआरआईएसएटी भारत को हरित क्रांति के सबसे सफल उदाहरणों में से एक होने का दावा करता है।[29] 19 मई 2016 को आईसीआरआईएसटी के सह-संस्थापक प्रो. एम.एस. स्वामीनाथन की किताब ''हरित क्रांति के पचास साल'' का विमोचन प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने किया। इस मौके पर प्रो. स्वामीनाथन को ''किसानों का वैज्ञानिक'' कहते हुए श्री मोदी ने दावा किया कि ''एक सतत् क्रांति को टिकाऊ तरीके से साकार करने में सबसे बड़ी बाधा वैज्ञानिक तरक्की और उन्हें किसान के खेत में लागू करने के बीच का फर्क है। प्रयोगशाला से जमीन तक हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए।''[30] इस ''प्रयोगशाला से जमीन तक'' वाले तरीके की आलोचना ऐसे कृषि अनुसंधानकर्ताओं ने की है जिनका नज़रिया दूसरों को भागीदार बनाने का रहता है, जो सबको साथ लेकर चलते हैं।[31] सबको साथ लेकर कृषि अनुसंधान किसान के खेत में, किसान की अगुवाई में किसानों की ज़रूरतों और जानकारी पर केन्द्रित होता है। इसके उलट एक अनजानी लैब की कॉर्पोरेट तकनीक को किसानों को खाली बर्तन मान उन पर थोपा जा रहा है।

आईसीआरआईएसएटी सीजीआईएआर द्वारा किये जाने वाले सभी जलवायु हितैषी कृषि के कार्यों में इसके शोध केन्द्र की तरह शामिल रहता है। 16 दिसम्बर 2016 को आईसीआरआईएसएटी ने सीजीएआईआर, सीसीएएफएस और पर्यावरण संरक्षण प्रशिक्षण एवं अनुसंधान संस्थान (ईपीटीआरआई) के साथ तेलंगाना में जलवायु हितैषी गाँवों के जरिये जलवायु हितैषी कृषि का पैमाना बढ़ाने के लिये एक परियोजना में साझेदारी की। शोधार्थियों, वैज्ञानिकों और तेलंगाना सरकार के नीति निर्माताओं आदि ने मिलकर जलवायु हितैषी कृषि की पायलट परियोजना के बारे में विचार-विमर्श किया और तेलंगाना में और अधिक जलवायु हितैषी गाँव विकसित करने के लिये इस जानकारी के उपयोग की अनुमति चाही।

---

[28] https://www.grain.org/article/entries/429-icrisat-leads-the-charge-to-the-private-sector

[29] http://oar.icrisat.org/3209/

[30] www.icrisat.org/icrisat-co-founder-ms-swaminathans-book-on-50-years-of-green-revolution-released-by-prime-minister/

[31] Chambers, R., A. Pacey, and L.A. Thrupp. 1989. Farmer First: Farmer Innovation and Agricultural Research. UK: Intermediate Technology Publications.

ये परियोजना सीजीआईएआर के जलवायु परिवर्तन, कृषि एवं खाद्य सुरक्षा पर अनुसंधान कार्यक्रम (सीसीएएफएस), जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय अनुकूलन कोष (एनएएफसीसी), पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय भारत सरकार द्वारा पर्यावरण संरक्षण प्रशिक्षण एवं अनुसंधान संस्थान (ईपीटीआरआई) व तेलंगाना सरकार के जरिये वित्तपोषित की गई।[32]

2.3.2 भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (आईसीएआर)

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (आईसीएआर) कृषि अनुसंधान एवं शिक्षण विभाग (डीएआरई) तथा भारत सरकार के कृषि एवं कृषक कल्याण मंत्रालय के अधीन एक स्वायत्त संस्था है। ये परिषद् पूरे देश के लिये खेती में अनुसंधान एवं शिक्षण के प्रबंधन और निर्देशन करने वाली सर्वोच्च संस्था है। ये संस्था अपने आपको गर्व से हरित क्रांति के अग्रदूतों में एक के तौर पर प्रस्तुत करती है, जिसने देश की कृषि उत्पादकता को दोगुने से भी ज़्यादा बढ़ा दिया था। लेकिन यह संस्था यह नहीं बताती कि उसके दूरगामी नतीजे क्या हुए और हरित क्रांति ने भूख और अकाल जैसी देश की समस्याओं को ख़त्म करने में बहुत ही सीमित भूमिका निभाई।

कृषि विज्ञान केन्द्रों के तहत उठाये गये नये कदमों में 121 जलवायु हितैषी गाँवों को बनाना शामिल है। कृषि विज्ञान केन्द्र आईसीएआर द्वारा खोले गये कृषि विस्तार केन्द्र हैं।[33] आईसीएआर ने हरियाणा में जलवायु हितैषी गाँव कायम करने के लिये सीजीआईएआर और सीसीएएफएस के साथ भागीदारी की है और जल्द ही वो अन्य क्षेत्रों में भी ऐसा ही करने जा रही है। विडंबना है कि भारत में जलवायु हितैषी कृषि के लिये हरियाणा और पंजाब जैसी जगहें चुनी गईं जहाँ पहले ही हरित क्रांति हो चुकी है। इसके आगे बढ़कर हाल में आईसीएआर और आईसीआरआईएसएटी ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किये हैं जो ''जलवायु हितैषी फसलों'' पर केन्द्रित है। इस समझौते से उन्हें तकनीकी और वित्तीय संसाधन साझा करने की इजाज़त मिल जायेगी। ये दोनों राज्य पहले से ही संकर बीजों के सबसे बड़े उत्पादक हैं, कोई भी यह समझ सकता है कि इन दोनों राज्यों में जलवायु हितैषी फसलों को आगे बढ़ाने का मतलब संकर बीजों का और अधिक इस्तेमाल होगा। इससे देश में बीजों के ऊपर एकाधिकार बढ़ जायेगा क्योंकि सीसीआईएआर/सीसीएएफएस कॉर्पोरेट कंपनियों के साथ काफी काम करते हैं। ये कंपनियाँ मुनाफ़ा कमाने और नियंत्रण रखने के लिये कठोर पेटेंट अधिकारों का इस्तेमाल करती हैं।

2.3.3 भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (आईएआरआई)

आईएआरआई के अंतर्गत जलवायु सक्षम खेती हेतु राष्ट्रीय नवोन्मेष (एनआईसीआरए) अनुकूलन और कम उत्सर्जन वाली तकनीकों के विकास और अमल से भारतीय कृषि को जलवायु परिवर्तन के लिये सक्षम बनाने के लक्ष्य के साथ काम करता है। 2016-17 के लिये इसके तकनीकी कार्यक्रम का एक लक्ष्य जलवायु हितैषी गाँवों का विकास और उन्हें बढ़ावा देना है। एनआईसीआरए ने अपना कार्यक्रम गुड़गाँव,

---

[32] http://www.icrisat.org/scaling-up-climate-smart-agriculture-for-telangana-india/

[33] http://www.icar.org.in/en/node/12380

उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिम बंगाल में लागू किया है। हालाँकि शुरूआती दो वर्षों में इसका ध्यान सिंधु-गंगा के मैदानी इलाकों पर था पर यह अपने उद्देश्यों को अन्य सिंचित भागों में भी लागू करने का लक्ष्य रखता है।

इसके अंतर्गत 6 लक्ष्य हैं[34] :

- जलवायु हितैषी मॉडल गाँवों का विकास
- एनआईसीआरए गाँवों में जलवायु हितैषी कृषि के लिये क्षमताएँ तैयार करना
- जलवायु हितैषी कृषि को बढ़ावा देने के लिये शैक्षणिक सहायता और प्रशिक्षण मॉडलों का विकास करना
- सक्षमता, विविधता और आजीविका के लिये ज़्यादा प्रभावी तंत्रों के आईसीएम मॉडल विकसित करना
- जलवायु सक्षम तकनीकों के प्रसार और अमल के लिये उनका आकार बढ़ाना ------
- जलवायु हितैषी किसानों और जलवायु हितैषी समुदायों को बढ़ावा देने वाले तत्वों का विकास

2.3.4 जलवायु परिवर्तन टिकाऊ विकास एवं जननेतृत्व हेतु राष्ट्रीय परिषद् (एनसीसीएसडी) (NCCSD)

एनसीसीएसडी की स्थापना 2010 में ग्लोबल वॉर्मिंग और जलवायु परिवर्तन से निबटने के लिये ऐसी जानकारी के प्रसार हेतु हुई थी, जिससे सही कार्ययोजना और नीतिगत सुझावों को सक्षम रूप से बनाया जा सके। यह परिषद् जीएसीएसए, यूएनएफसीसीसी, जीसीएफ और इनके सहयोगियों तथा सरकारी संस्थाओं जैसे नीति आयोग और आईसीएआर से मान्यता प्राप्त है। एनसीसीएसडी ने सक्रिय रूप से जलवायु परिवर्तन के समाधान के रूप में जलवायु हितैषी को आगे बढ़ाया है। इसी दिशा में आगे बढ़ते हुए इस परिषद् ने जलवायु परिवर्तन के राष्ट्रीय परिषद् (एनसीसीसी), टिकाऊ विकास एवं जननेतृत्व (एसडीपीएल) और सूखी भूमि पर कृषि हेतु केन्द्रीय अनुसंधान संस्थान (सीआरआईडीए) के साथ मिलकर ''जलवायु हितैषी खेती के लिये आगे का रास्ता : भारतीय दृष्टिकोण'' नाम की पुस्तक प्रकाशित की। यह पुस्तक ''भारत के माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी'' को समर्पित है जिन्होंने ''गुजरात में 'कृषि महोत्सव' कार्यक्रमों के माध्यम से जलवायु हितैषी कृषि की धारणा से परिचित कराया।''

अन्य फसलों को विकृत करने की उनकी क्षमता ने यह दिखा दिया है कि परंपरागत खेती और जीएम खेती एक साथ नहीं हो सकती। हालाँकि यह साफ है कि इस लड़ाई में संयुक्त राष्ट्र की बड़ी संस्थाओं पर प्रभाव जमा चुके कृषि उद्योगों का ही पलड़ा भारी है। अगर जीएमओ विकासशील देशों में लाई जाती हैं जहाँ खेती का बड़ा हिस्सा छोटी जोत वाले किसानों का है, वहाँ यह अपने साथ बिना जुताई वाली खेती, एकफसलीय खेती और इस तरह के तरीकों को भी लाएगी। छोटी जोत वाले किसानों का जीवन-यापन बीजों और पौधों की विविधता पर निर्भर करता है जिसके लिये यह सब सीधे ख़तरे हैं।[35]

---

[34] *http://nicra.iari.res.in/tech.html*

[35] *http://nccsdindia.org/wp-content/uploads/2015/11/CSA_Book1.pdf*

3. जलवायु हितैषी कृषि के अंतर्गत बढ़ावा दी जाने वाली पद्धतियाँ

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, जलवायु हितैषी खेती तकनीकी तौर-तरीके से अधिक एक नज़रिया है, लेकिन खेती की कुछ ऐसी तथाकथित 'टिकाऊ' पद्धतियाँ हैं जिन पर अधिक जोर दिया जा रहा है। इनमें बिना जुताई की खेती, बायो-चार जैसी पद्धतियाँ शामिल हैं। जलवायु हितैषी खेती के प्रस्तावक यह नहीं बताते कि वास्तव में ये खेती है क्या, या इसमें क्या वर्जित है। इस खेती की कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं है। इसके अर्थ इतने खुले और विस्तृत हैं कि इसके तहत किसी भी तकनीक को 'टिकाऊ' कहा जा सकता है और उसके लिए किसी भी तर्क को तोड़ा-मरोड़ा जा सकता है। ला विया कैंपेसिना (छोटे किसानों का एक अंतरराष्ट्रीय संगठन) के मुताबिक जलवायु परिवर्तन के संकट से निपटने के लिए जितने फालतू समाधान या तकनीकें हैं, उन सभी को जलवायु हितैषी खेती की श्रेणी में रख दिया गया है। इसमें सघन औद्योगिक खेती, कृषि ईंधन और आनुवांशिक इंजीनीयरिंग से तैयार फसलें और पौधे, कृत्रिम जीवविज्ञान व नैनो टेक्नोलॉजी जैसी तकनीकें भी हैं जो खतरनाक भी हो सकती हैं। इन नई तकनीकों के असरों को लेकर कोई साफ़ समझ नहीं है और ये जलवायु या पर्यावरण के संकट से निपटने में मददगार होने के बजाय हमारे पहले से ही संकट में पड़े ग्रह पर और तबाही ला सकती हैं। सबसे बड़ी बात ये कि यह तकनीकें भी उसी हरित अर्थव्यवस्था के प्रस्ताव का हिस्सा हैं जो न्याय और पारिस्थितिकी की कमज़ोर समझ पर आधारित है।

यदि कोई जलवायु हितैषी कृषि के टिकाऊ होने के दावों को देखे तो ऐसा ही लगेगा कि जलवायु हितैषी कृषि और कृषि-पारिस्थितिकी एक समान ही हैं। वास्तव में ही, जलवायु हितैषी कृषि में कई बातें कृषि पारिस्थितिकी जैसी ही लगती हैं परंतु दोनों का समान होना सच्चाई से बहुत दूर है। दोनों बुनियादी रूप से ही अलग हैं।[36] जीएसीएसए जैसे जलवायु हितैषी कृषि के पैरवीकार ''खेती की पैदावार और आय में टिकाऊ बढ़ोत्तरी'' पर जोर देते हैं, जो कृषि पारिस्थितिकी के जैसा ही है। सीजीआईएआर कहती है ''जलवायु हितैषी कृषि एक निश्चित कार्यों का समूह नहीं है जिसे हर जगह एक सी तरह लागू किया जा सके। यह एक तरीका है जिसमें अलग-अलग तत्व स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार शामिल हैं।'' यह भी कृषि पारिस्थितिकी की तरह ही है। जलवायु हितैषी कृषि करने वाले खेत से आगे बढ़कर और व्यापक रूप से आसपास के इलाके को शामिल कर सोचने पर जोर देते हैं। ऊपर-ऊपर देखने पर ऐसा लगता है जैसे जलवायु हितैषी कृषि टिकाऊ होने पर बहुत ध्यान देती है।

इस सबके बाद भी, जलवायु हितैषी कृषि कई रासायनिक खरपतवारनाशक, जीएम जैसी कई तकनीकों को बढ़ावा देती है जिनका नुकसानदायक होना सिद्ध हो चुका है और जो कृषि पारिस्थितिकी के पूरी तरह विपरीत हैं। यह कार्बन समायोजित करने जैसी योजनाओं पर भी ध्यान देते हैं, जो जलवायु हितैषी कृषि से कम उत्सर्जन का फर्ज़ी श्रेय लेकर उत्सर्जन को समायोजित करते हैं और प्रदूषक को प्रदूषण फैलाने से नहीं रोकते। सच्चाई यह है कि जलवायु हितैषी कृषि को बनाया ही इस तरह गया है कि कार्बन बाजारों को विस्तार हो और कृषि और वित्तीय उद्योगों को फायदा मिल सके।[37] इसी कारण जिन खेती की तकनीकों को जलवायु हितैषी कृषि में बढ़ावा दिया जाता है वे सभी कॉर्पोरेट तकनीकों, रासायनिक उर्वरकों आदि पर

---

[36] *Pimbert, M. 2016. Agroecology as an Alternative Vision to Conventional Development and Climate-smart Agriculture. Development, 58(2–3), 286–98.*

[37] *https://www.commondreams.org/views/2014/10/09/climate-smart-agriculture-isnt-agroecology*

आधारित हैं। इसी कारण इनकी बाहरी लागत ज़्यादा है जो सिर्फ़ कुछ बड़े किसानों और बड़े कृषि-उद्योगों को फ़ायदा पहुँचाएगी।

जलवायु हितैषी कृषि की कुछ प्रमुख तकनीकों का जिक्र आगे है :

(i) बिना जुताई वाली खेती को खरपतवारनाशक प्रतिरोधी फसलों से जोड़ना

बिना जुताई वाली खेती को मिट्टी को गुणों को बरकरार रखने और अधिक सक्षम बनाने के एक तरीके के रूप में बढ़ावा दिया जाता रहा है। यह जुताई द्वारा मिट्टी से छेड़छाड़ किये बिना साल दर साल फसलें और चारा उगाने का एक तरीका है। बिना जुताई वाली खेती के पक्ष में यह बातें हैं कि यह मिट्टी के कटाव को रोकती है, अंदर मौजूद पानी को भाप बनकर उड़ने से रोककर मिट्टी में पानी की पैठ बनाये रखती है और मिट्टी के गुणों में सुधार करती है। बिना जुताई की खेती एक महत्त्वपूर्ण कृषि-पारिस्थितिकीय तकनीक है। उदाहरण के लिये इसे फुकोका ने भी बढ़ावा दिया, जिसने ''कुछ मत करो'' (Do nothing farming) वाली खेती की शुरूआत की थी। लेकिन कई खरपतवारनाशक कंपनियाँ भी खरपरवारनाशक प्रतिरोधी फसलों के साथ पैकेज में इसे बढ़ावा दे रहे हैं। जैसे मोन्सांटो की ''जीएम राउण्डअप रेडी'' फसलें। इसका मतलब है कि एक विशेष खरपतवारनाशक (इस दवा में राउण्डअप) का छिड़काव फसल के आसपास के सभी पौधों और खरपरवार को नष्ट करने के लिये उसी फसल पर किया जायेगा जो खरपरवारनाशक का प्रतिरोध करने ही तैयार की गई है। ऐसा करने से जुताई करने की ज़रूरत भी कम हो जायेगी जो अधिकतर खरपतवार को खत्म करने के लिये की जाती है। समस्याएँ पैदा करने वाली बिना जुताई की फसल को जलवायु हितैषी कृषि में बढ़ावा दिया जाता है और यह जीएम फसलों को ग्रहण करने के रास्ते पर भी आगे है। मोन्सांटो अभी से झूठा प्रचार कर रहा है कि राउण्डअप रेडी फसलें ''जलवायु परिवर्तन से निबट सकती हैं''[38] परंतु कृत्रिम खरपतवारनाशकों का इस्तेमाल राउण्डअप के इस्तेमाल के साथ लगातार बढ़ रहा है।[39] बिना जुताई की खेती और जीएम फसलों का संबंध अर्जेंटीना और ब्राजील में जीएम सोया की खेती के संबंध में हुए अध्ययनों में दिखता है, जहाँ पाया गया कि 2005 में जीएम सोया की कुल बुवाई का 87 प्रतिशत बिना जुताई वाली खेती से हुआ था। इसकी तुलना में 1996 में जब जीएम सोया की शुरूआत हुई थी तब इसका हिस्सा 36 प्रतिशत था।[40]

बिना जुताई की खेती के साथ एक और विवादास्पद मुद्दा इसकी कार्बन को ज़ब्त करने की क्षमता भी है। भले की बिना जुताई की खेती और कार्बन ज़ब्त करने के संबध को लेकर वैज्ञानिक सबूतों की कमी है, फिर भी मोन्सांटो ने लगातार बिना जुताई की खेती को स्वच्छ विकास के तरीकों (सीडीएम) में शामिल कराने की कोशिश की है।[41] ऐसा इसलिये है क्योंकि शामिल होने पर किसान और राष्ट्रीय सरकारें दोनों ही बिना जुताई की खेती को बढ़ावा देंगे जिससे वह कार्बन क्रेडिट के बाजात का हिस्सा बन सकें और इसका नतीज़ा

---

[38] http://gmwatch.org/en/news/archive/2010/12723-carbon-credits-for-no-till-with-gm-crops-and-glyphosate

[39] http://www.ucsusa.org/food_and_agriculture/our-failing-food-system/genetic-engineering/increasing-herbicide-use.html#.WdR838YrzeQ

[40] http://commodityplatform.org/wp/wp-content/uploads/2009/08/2009-public-report-gm-soy-deliverable1.pdf

[41] http://www.cecoedecon.org.in/EngagingwithClimate.pdf, page 73

कृषि-उद्योगों के बिना जुताई वाले उत्पादों की आसमान छूती बिक्री होगा। इस तरह यह कोई हैरत की बात नहीं हैं कि बिना जुताई वाली खेती को जलवायु हितैषी कृषि में बढ़ावा दिया जाता है।

इस तरीके की बिना जुताई वाली खेती ज़्यादा बाहरी लागत (बीज बोने के यंत्र, बीज, खरपतवारनाशक) के कारण छोटी जोत वाले किसान के लिये ठीक नहीं है। इससे आगे बढ़कर खरपतवारनाशकों पर निर्भर होने के कारण और बिना-टिकाऊ कृषि तकनीकों जैसे जीएमओ से जुड़े होने की वजह से यह पर्यावरण के लिये टिकाऊ भी नहीं है। पर्यावरण और छोटी जोत के किसानों को लाभ देने के उलट यह उन कुदरती संसाधनों जिन पर यह सब निर्भर हैं, के लिये ख़तरा पैदा करेगी और उनकी खाद्य-संप्रुभता का उल्लंघन करेगी।

(ii) बायो-चार

बायो-चार एक ऐसी तकनीक है जिसमें जैव-भार (बायोमास) को साधारणतः 300वसे. से 700वसे. के बीच के तापमान पर ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में गर्म किया जाता है। इससे निकलने वाला अंतिम उत्पाद - बायोचार मिट्टी में फैलाया जाता है। इस तकनीक के बढ़ावा जलवायु परिवर्तन को कम करने (कार्बन ज़ब्त करके) के साथ-साथ मिट्टी की उर्वरकता को बढ़ाने के लिये दिया जा रहा है, जिससे पैदावार बढ़ाई जा सके। बायोचार योजनाओं के बारे में विकासशील देशों में किये गये विश्व बैंक के एक सर्वेक्षण के अनुसार इस तरह के सबसे ज़्यादा प्रोजेक्ट भारत में मौजूद हैं, जिनमें उनका एक लक्ष्य ''एक नई तकनीक को बढ़ावा देकर बायोचार का उत्पादन और उसे दफ़न कर कार्बन को ज़ब्त किया जा सके और मिट्टी की उर्वरकता बढ़ाई जा सके।''[42] इसी वजह से बायोचार बनाने वाले चूल्हों को भी ग्रामीण परिवारों में बढ़ावा दिया जा रहा है।

परंतु यहाँ भी बिना जुताई वाली खेती की तरह ही कार्बन ज़ब्त करने और पैदावार बढ़ाने के दावों के संबंध में वैज्ञानिक सबूत कम ही हैं। बायोचार की मिट्टी की उर्वरकता बढ़ाने के संबंध में भी बहुत ही कम शोध कार्य हुआ है। इससे आगे, अगर बायोचार का उत्पादन ठीक से न हो तो यह मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड पैदा करता है, ये दोनों ही गैसें ग्लोबल वॉर्मिंग के प्रमुख कारणों में से हैं। उत्पादन प्रक्रिया में निकलने वाली चार की धूल और छोटे कण किसानों की सेहत को नुकसान पहुँचा सकते हैं। इन्हीं मुद्दों को ध्यान में रखकर विश्व बैंक द्वारा प्रकाशित एक अध्ययन ने दावा किया है ''बायोचार उत्पादन की पूरी प्रक्रिया में सही मानक तकनीकों और सुरक्षित तरीकों के इस्तेमाल से इन जोखिमों से बचा जा सकता है। इन तकनीकों का विकास लगातार बढ़ते उपयोगकर्ताओं द्वारा विज्ञान के साथ किया जा रहा है।''[43] भारत में नियंत्रकों के पिछले कार्यों को देखते हुए इन ''सही मानक तकनीकों'' का उपयोग एक बहुत दूर का सपना लगता है। फिर भी, ''सही मानक तकनीकों'' के न होने पर और बायोचार के संबंध में कोई क़ायदे का शोध न होने पर भी इसका इस्तेमाल जलवायु हितैषी कृषि में किया जा रहा है।

---

[42] https://openknowledge.worldbank.org/bitstream/handle/10986/18781/888880PUB0Box30lso0784070June122014.pdf?sequence=1&isAllowed=y

[43] https://openknowledge.worldbank.org/bitstream/handle/10986/18781/888880PUB0Box30lso0784070June122014.pdf?sequence=1&isAllowed=y; page 5

बायोचार को बढ़ावा देने वालों में अंतरराष्ट्रीय बायोचार उपक्रम (आईबीआई) है, जो इसकी पैरवी कार्बन समायोजन के लिये कर रहा है। हालाँकि इसे अभी सीडीएम के रूप में मान्यता नहीं मिली है, फिर भी बड़े स्तर पर बायोचार उत्पादन का एक तरीका ''सत्यापित कार्बन मानक'' को प्रस्तुत किया गया है जिस पर विचार किया जा रहा है। इसके साथ ही, आईबीआई ने बायोचार को प्रमाणित करने की योजना भी बनाई है जिसका लक्ष्य ''मानक, मान्यता प्राप्त बायोचार - जो आईबीआई के बायोचार मानकों पर खरा हो। ऐसे बायोचार को सत्यापित कर उपभोक्ताओं और बाज़ार में यक़ीन पैदा करना है।'' आईबीआई के सदस्यों में नवीन बायोचार और पायरोलिसिस (Pyrolysis – अधिक तापमान से विखंडन) कंपनियों, कार्बन समायोजन कंपनियों और जैव-ऊर्जा कंपनियों का दबदबा है।

(iii) जीएमओ के इस्तेमाल की ओर झुकाव

जीएमओ को आगे बढ़ाने वाले अक़्सर की इसे बढ़ती हुई आबादी को खाद्य की समस्या के समाधान के रूप में पेश करते हैं, हालाँकि इस बात के सबूत कम ही हैं कि यह पैदावार बढ़ाती हैं या खाद्य सुरक्षा देती हैं। इसके उलट, जीएम फसलों ने ईंधन और अन्य उद्योगों के लिये उत्पादन कर और विश्व के खाद्य भण्डार को कम कर खाद्य-असुरक्षा को बढ़ाया है।

जीएम फसलें एक पौधे, जीव या जीवाणु के अनजाने जींस (वंशाणु) को एक दूसरे पौधे में प्रविष्ट कर तैयार की जाती हैं जो इसे कुछ लक्षण जैसे खरपतवारनाशक प्रतिरोधी होना, सूखा प्रतिरोधी होना, विटामिनों से भरपूर होना आदि देती हैं। मगर, इस प्रक्रिया के मनुष्य व अन्य जीवों की सेहत पर होने वाले असर अभी तक पूरी तरह नहीं जाने जा सके हैं जो इसे एक विवादास्पद मुद्दा बनाता है। पर्यावरण और इसके संसाधनों के मामले में जीएम फसलें पर्याप्त जोखिम भरी हैं। अब तक विकसित की गईं जीएम फसलों में से अधिकांश खरपतवारनाशक प्रतिरोधी हैं, फिर भी, जीएम फसलों ने खरपतवारनाशक के इस्तेमाल को घटाने की जगह बढ़ाया ही है।[44] इसके साथ ही, जीएम फसलों के प्रदूषण और आसपास के इलाकों में फैलने के ऐसे कई मामले हैं जिनमें जीएम फसलों की खरपतवारनाशक प्रतिरोधक क्षमता ने खरपतवारों के साथ ही मिलकर महा-खरपतवार (Superweeds) बना लिये हैं। इसकी वजह से किसानों को मजबूरीवश इन महा-खरपतवारों को मारने और ज़्यादा खरपरवारनाशकों का प्रयोग करना पड़ा है। इस तरह से, जिनका फ़ायदा हो रहा है वह सिर्फ़ कृषि-उद्योग हैं जो जीएम फसलें, रसायन और कीटनाशक बेच रहे हैं और जिनकी बिक्री में 1998 से 2012 के बीच 7 गुना इजाफ़ा हुआ है।

जीएम से ही जुड़ा एक दूसरा मुद्दा कि यह बड़े स्तर की औद्योगिक खेती के तरीकों जैसे एकफसलीय खेती के लिये ही उपयुक्त है जिससे पौधों और बीजों की विविधता को ख़तरा है। 2011 तक ही, मोन्सांटो, ड्यूपोन्ट, सिन्जैंटा आदि बड़ी जीएम कंपनियों ने वैश्विक बीज बिक्री के लगभग 70 प्रतिशत हिस्से पर नियंत्रण कर लिया था।[45] इससे यह भी साफ होता है कि किस तरह यह उद्योग कुछ ही हाथों में हैं और

---

[44] *https://www.forbes.com/sites/bethhoffman/2013/07/02/gmo-crops-mean-more-herbicide-not-less/#7cac2d163cd5*

[45] *https://www.theguardian.com/environment/2011/oct/19/gm-crops-insecurity-superweeds-pesticides*

खाद्य-श्रृंखला पर कॉर्पोरेट नियंत्रण कैसा है। अगर जीएम फसलें जलवायु परिवर्तन, भूख या किसी और मुद्दे को रोकने में सहायक भी होतीं तब भी इन फसलों के पेटेंट कंपनियों के पास होने के कारण यह सब किसान के लिये बहुत महँगा होता।

हालाँकि जलवायु हितैषी कृषि के अंतर्गत जीएमओ को खुलकर बढ़ावा नहीं दिया गया है पर इन्हें ख़ारिज भी नहीं किया गया है। अब तक यह साफ है कि बिना जुताई वाली खेती जैसे समाधान आसानी से विकासशील देशों में बड़े पैमाने पर जीएमओ की शुरूआत कर सकते हैं। इससे आगे, मोन्सांटो, सिन्जैंटा जैसे जीएम फसलों के उत्पादक कृषि-उद्योगों का जलवायु हितैषी खेती और जलवायु हितैषी गाँवों में शामिल होना इस जोखिम को और बढ़ा देता है कि इन माध्यमों के द्वारा जीएम फसलों को बढ़ावा दिया जायेगा। जीएम फसलों के प्रदूषण और समीप में होने वाली अन्य फसलों को विकृत करने की उनकी क्षमता ने यह दिखा दिया है कि परंपरागत खेती और जीएम खेती एक साथ नहीं हो सकती। हालाँकि यह साफ है कि इस लड़ाई में संयुक्त राष्ट्र की बड़ी संस्थाओं पर प्रभाव जमा चुके कृषि उद्योगों का ही पलड़ा भारी है। अगर जीएमओ विकासशील देशों में लाई जाती हैं जहाँ खेती का बड़ा हिस्सा छोटी जोत वाले किसानों का है, वहाँ यह अपने साथ बिना जुताई वाली खेती, एकफसलीय खेती और इस तरह के तरीकों को भी लाएगी। छोटी जोत वाले किसानों का जीवन-यापन बीजों और पौधों की विविधता पर निर्भर करता है जिसके लिये यह सब सीधे ख़तरे हैं।

3.1 भारत में जलवायु हितैषी गाँव के मामले का हरियाणा में अध्ययन

हरियाणा दक्षिण एशिया की उन शुरूआती जगहों में से था जहाँ जलवायु हितैषी गाँवों को पायलट रूप से लागू किया गया था। खाद्य उत्पादन में देश में प्रमुख स्थान रखने वाले राज्य के तौर पर यहाँ जलवायु परिवर्तन का जोख़िम ज़्यादा है। गिरता जल स्तर और घटती मिट्टी की गुणवत्ता जैसी कुछ समस्याएँ प्रमुख हैं। हरित क्रांति की शुरूआत करने के वक़्त भी हरियाणा ही मुख्य केन्द्र था और इसीलिये यहाँ वैश्विक एजेंसियों[46] और सरकार की साझेदारी भी पुरानी थी। इस सबने मिलकर हरियाणा को जलवायु हितैषी गाँवों का भी प्रमुख स्थान बना दिया। सीजीआईएआर-सीसीएएफएस और अंतरराष्ट्रीय मक्का और गेहूँ सुधार केन्द्र (सीआईएमएमवाईटी) द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (आईसीएआर), कृषि विभाग (हरियाणा सरकार), हरियाणा किसान आयोग, सीसीएस हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, अंतरराष्ट्रीय वनस्पति पोषण संस्थान (आईपीएनआई), इफ्को किसान संचार लिमिटेड, किसान संचार और किसानों का सामुदायिक के साथ मिलकर साझेदारी में जलवायु हितैषी गाँवों के कार्य किया जा रहा है। जैस कि देखा जा सकता है, इस कार्यक्रम को केन्द्र सरकारी की जगह सीधे हरियाणा सरकार के साथ मिलकर चलाया जा रहा है।

नीलोखेड़ी, इन्द्री, घरौंदा और निस्सिंग हरियाणा के करनाल जिले के वह गाँव हैं जहाँ जलवायु हितैषी गाँव को लागू किया गया है। शुरूआती समय में करनाल में ४ जलवायु हितैषी गाँव थे (2012)। 2014 तक इसे 28 जलवायु हितैषी गाँवों तक बढ़ाया जा चुका है।[47] 2015 में कृषि विभाग (हरियाणा सरकार) ने सीआईएमएमावाईटी-सीसीएएफएस के साथ मिलकर जलवायु

---

[46] The same players; (CGAIR, UN agencies like FAO, World Bank) were involved in fostering Green Revolution and now the concept of CSA and CSVs as well l

[47] https://cgspace.cgiar.org/rest/bitstreams/34314/retrieve

हितैषी गाँवों को मुख्यधारा में लाने और 500 नये जलवायु हितैषी गाँव विकसित करने की योजना बनाई है।[48]

जलवायु हितैषी गाँवों में लागू की जाने वाली तकनीकें नीचे दी गई हैं। इन तकनीकों को उसी तरह लिखा गया है जिस तरह सीजीएआईआर-सीसीएफएएस की रिपोर्ट में दिया गया है। इनका विश्लेषण टिप्पणी वाले खाने में है।[49]

स. क्र.	लागू की गई तकनीक	परिवारों की संख्या	आवश्यक लागत	टिप्पणी
1	बिना जुताई की खेती (ऊपर चर्चा की गई है)	898	- बिना जुताई बोने वाली मशीन - खरपतवार नियंत्रण के लिये खरपतवारनाशक	ऊपर चर्चा की गई है
2	ज़मीन को लेज़र से समतल करना (लेज़र-लैण्ड लेवलर ट्रैक्टर से खींचा जाने वाला और लेज़र से नियंत्रित यंत्र है जिससे जमीन समतल की जाती है। जमीन समतल करने से पानी को बराबर पहुँच और फेलाव मिलता है और पैदावार बढ़ती है। जमीन समतल करने से कम ऊर्जा में ज़्यादा काम हो जाता है क्योंकि कम पानी निकालने से बिजली का पम्प चलाने की ज़रूरत कम पड़ती है)	8795	- मशीन रु. 500-700 प्रति घंटा	छोटी जोत वाले किसानों के अनुकूल/आवश्यक नहीं है।
3	खेती की क़िस्मों में परिवर्तन और तनाव सह सकने वाली किस्में (फसलों में विविधता लाने का उद्देश्य किसान की फसलें बढ़ाना है जिससे वे आय के लिये एक ही फ़सल पर निर्भर न रहें। नवाचारी फसलों का पोर्टफोलियो, तंत्र का पूरा इस्तेमाल और विविधता लाने के विकल्प टिकाऊ	1561	- आनुवांशिक रूप से बदले गये बीजों (जीई) की ''तनाव सह सकने वाली'' क़िस्में	- जीई बीजों का दोबारा इस्तेमाल नहीं किया जा सकता और इनके लिये उर्वरक, पानी खरपतवारनाशक आदि की ज़्यादा ज़रूरत होती है। - देशी बीजों के इस्तेमाल से दूरी

[48] *http://www.cimmyt.org/cimmyt-ccafs-initiative-develops-500-new-climatesmart-villages-in-haryana-india/*

[49] *https://cgspace.cgiar.org/rest/bitstreams/34314/retrieve*

	रूप से फसलों को और गहन बनाने में मदद करते हैं।			
4	मौसम और कृषि सलाहकारों से जुड़ने के लिये सूचना और प्रसारण तकनीक (किसानों को मौसम के पूर्वानुमान, बीजों की नई किस्मों, जलवायु हितैषी कृषि और स्थिर कृषि के लिये सुझाव मोबाइल पर वॉइस और टैक्स्ट मैसेज के रूप में प्राप्त होंगे)	431	- मोबाइल फोन	- हालाँकि मौसम का पूर्वानुमान किसानों के लिये फ़ायदेमंद होगा पर बीजों की नई किस्मों और जलवायु हितैषी कृषि का प्रचार पर्यावरण और स्थानीय संसाधनों को नुकसान पहुँचाने वाली तकनीकों को बढ़ावा देना वाला सिद्ध हो सकता है। इसके साथ ही, यह ज़रूरी है कि किसानों को किसी तकनीक के विषय में पूरी जानकारी, तकनीक के गुण और दोषों समेत मिले।
5	सीधे ही बोयी जाने वाली धान (सीधे बोयी जाने वाली धान किसी और फसल की तरह सूखी जमीन में सीधे ही बोयी जाती है। इससे छोटे पौधों को हाथ से दूसरी जगह लगाने की मेहनत नहीं करनी पड़ती। इससे फसल में लगने वाले पानी की मात्रा कम होती है और मिट्टी की स्थिति में सुधार होता है।)	102	- खरपतवार नियंत्रण के लिये खरपतवारनाशक	- खरपतवार का नियंत्रण करना कठिन है। - नये तरह की मशीनें जैसे टर्बो हैप्पी सीडर[50] को सीधे ही बोई जाने वाली धान के लिये बढ़ावा दिया गया है।
6	ग्रीन-सीकर उपकरण (फसल के पौधे के ऊपर पकड़ने पर यह उपकरण Normalised Difference Vegetation Index (NDVI) की गणना करता है। इससे किसी खेत में फसल की सेहत और नाइट्रोजन आवश्यकता का पता चलता है। ग्रीन-सीकर का इस्तेमाल	128	- ग्रीन-सीकर उपकरण	- उपकरण की कीमत रू. 43355/-

[50] *https://cgspace.cgiar.org/rest/bitstreams/34314/retrieve*

	कर किसान उर्वरकों का सही इस्तेमाल कर उत्पादकता और फ़ायदा बढ़ाता है और साथ में पर्यावरण को कम नुकसान होता है)			
7	अवशेष की पलवार करना (फसलों के अवशेष की पलवार मिट्टी के ऊपर घासफूस और भूसे की एक हिफ़ाजती परत बरकरार रखने की तकनीक है। नवीन मशीनों जैसे टर्बो हैप्पी सीडर के इस्तेमाल से फसलें सीधे ही बिना जुताई के बोई जा सकती हैं। सतह का अवशेष पलवार की तरह काम करता है।)	53		- बिना जुताई की खेती के साथ बढ़ावा दिया जा रहा है। - खेती में और ज़्यादा मशीनों का इस्तेमाल होगा।
8	बारी-बारी से गीला करना और सुखाना (बारी-बारी से गीला करना और सुखाने की तकनीक में खेतों में बारी-बारी से पानी दिया और निकाला जाता है। सही तरीके से देखरेख के लिये टेंसियोमीटर किसानों को यह तय करने में मदद कर सकता है कि खेत में पानी कब देना है। इस तकनीक से मीथेन गैस का उत्सर्जन लगातार पानी भरे रहने की तुलना में औसतन 48 प्रतिशत तक कम किया जा सकता है)	60		
9	फलियों के साथ मिलाकर फसलों में विविधता लाना (फसलों को बदलने के चक्र में फलियों को शामिल करने से मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा सही रहती है।)	893		

10	Nutrient Expert Decision Support Tool (किसानों को व्यक्तिगत रूप से सही स्थान पर सही उर्वरक इस्तेमाल करने में मदद करता है। यह स्थान-विशेष साधन मिट्टी के परीक्षण को और मूल्यवान बनाता है और किसान को मिट्टी परीक्षण के अभाव में भी एकदम सटीक नुस्ख़ा देता है।)	59	- यह एक सॉफ्टवेयर है जिसे चलाने के लिये कम्प्यूटर या एंड्रोयड मोबाइल फोन की ज़रूरत होती है - बीच के स्तर की तकनीक और अंग्रेजी भाषा का इस्तेमाल	- यह आईपीएनआई का उत्पाद है जिसके सदस्यों में शेल, मोज़ैक, यारा पोटाश शामिल हैं। - इसके इस्तेमाल के नियम व शर्तों में उल्लेख है कि ''किसी भी व्यवसायिक क्षति और घाटे, विशेषतः सॉफ्टवेयर के इस्तेमाल से फसलों और मिट्टी को हुई क्षति'' के लिये आईपीएनआई ज़िम्मेदार नहीं होगा।[51] - सिर्फ़ संकर मक्का, गेहूँ और चावल के लिये उपलब्ध है।
11	स्थान विशेष के अनुसार पोषक तत्वों का प्रबंध (पत्तियों के रंगों का चार्ट एक देखने वाला चार्ट होता है जिसका इस्तेमाल पत्तियों के हरेपन को नापकर धान के खेतों में सही मात्रा में नाइट्रोजन डाल कर अधिक से अधिक पैदावार लेने में किया जाता है)	82	- पत्तियों के रंगों वाला चार्ट	- सिर्फ़ उत्पादकता पर ध्यान देकर नाइट्रोजन के पर्यावरण पर होने वाले असर को नज़रअंदाज़ करता है।

4.1a जलवायु हितैषी कृषि की कुछ तकनीकों का विश्लेषण

जैसा कि ऊपर देखा जा चुका है, जलवायु हितैषी कृषि की तकनीकें जिन्हें बढ़ावा दिया जा रहा है, वे ज़्यादा संसाधन लेती हैं, तकनीक पर बहुत ज़्यादा आधारित हैं और उनकी लागतें ज़्यादा हैं। खेती की तकनीकों से ज़्यादा ध्यान तकनीकी उपकरणों पर दिया गया है, जो कि छोटी जोत वाले किसानों के लिये क़िफायती नहीं है। देश में किसानों की आबादी में छोटी जोत वाले किसान ही ज़्यादा हैं। होने को कुछ कृषि-पारिस्थितिकी तकनीकें जैसे पलवार भी इसमें शामिल हैं पर इन्हें बिना जुताई वाली खेती के साथ ही बढ़ावा दिया जा रहा है। इससे आगे, ये तकनीकें खेती के मॉडल को देशी ज्ञान, देशी संसाधन (जैसे स्थानीय बीज) और किसानों पर आधारित जानकारी से दूर कर एक अधिक औद्योगीकृत, मशीनी, उर्वरक आधारित खेती के मॉडल की ओर ले जाते हैं जिसका टिकाऊ न होना पहले ही सिद्ध हो चुका है। इससे ज़्यादा दिक्कत पैदा करने वाली बात यह है कि बिना जुताई वाली खेती को अनूकूलन और कम उत्सर्जन की क्षमता के कारण बढ़ावा दिया जा रहा है जबकि यह सब वैज्ञानिक तरीके से पूरी तरह सिद्ध नहीं है और बहस का मुद्दा है।

[51] *http://software.ipni.net/package/770C5AEE1A369CD785257C430053D4CC*

जलवायु परिवर्तन और खाद्य सुरक्षा के विषय पर एक संतुलित रास्ते की ओर केन्द्रित होने की जगह यह तकनीकें पैदावार बढ़ाने पर केन्द्रित हैं। अगर प्रमुख लक्ष्य जलवायु परिवर्तन और खाद्य सुरक्षा से निबटना ही है तो भी ऐसी कई कृषि पारिस्थितकी तकनीकें हैं जिन्हें बढ़ावा दिया जा सकता है। उर्वरकों का इस्तेमाल जलवायु परिवर्तन के प्रमुख कारणों में से एक है, इनका इस्तेमाल कम करने की जगह कई तकनीकों में उर्वरक ज़रूरी हैं और कई पूरी तरह इन्हीं पर आधारित हैं।

3.2 जलवायु बीमा योजना

इन कृषि तकनीकों के अलावा बिहार के वैशाली जिले के जलवायु हितैषी गाँवों में जलवायु बीमा योजना की शुरूआत भी की गई है।[52] यह योजना सूचीबद्ध बीमा पर आधारित है जिसमें फसलों की पैदावार में कमी को बारिश, तापमान, नमी आदि की एक सूची से जोड़ दिया जाता है। इस तरह जिन किसानों का बीमा होता है उन्हें उनकी फसल में कमी की क्षतिपूर्ति इस सूची के अनुसार की जाती है, इसी से यह निर्धारित होता है कि बारिश, तापमान की अधिकता या कमी से फसल को कितना नुकसान हुआ। यह योजना असल में एक सरकारी योजना, प्रधान मंत्री फसल बीमा योजना (पीएमएफबीवाई) है पर जलवायु हितैषी गाँवों में यह भारतीय कृषक उर्वरक सहकारी संघ-टोक्यो जनरल इंश्योरेंस (इफ्को-टोक्यो) द्वारा दी जा रही है जो भारत की तीसरी सबसे बड़ी निजी सामान्य बीमा कंपनी है। पीएमएफबीवाय एक 16 पेज का दस्तावेज है जिसका झुकाव बैंकों की ओर बहुत ज़्यादा है। हालाँकि सीजीएआईआर सीसीएएफएस इस बीमा योजना की बहुत सुंदर तस्वीर दिखाते हैं पर यह बीमा योजना उतनी सुंदर नहीं जितनी दिखती है। किसानों से ऐसी फसलों के लिये फसल बीमा के पैसे लेना जिन्हें पैदा करने में उनका योगदान नहीं रहा नैतिक आधार पर ठीक नहीं है। व्यवहार में भी बीमा योजना की शर्तें किसानों के लिये बहुत कठिन और अनुचित हैं।

इफ्को-टोक्यो द्वारा दी जाने वाली पीएमएफबीवाई के अनुसार बीमा कंपनी सारे नुकसान के लिये जिम्मेदार नहीं है। पहले ही इफ्को-टोक्यो की साधारण परिभाषा 19 के अनुसार किसान को नुकसान के समय कुल क़ीमत का एक निर्धारित हिस्सा वहन करना पड़ेगा। किसान निर्धारित हिस्सा वहन करेगा और कंपनी केवल उससे ऊपर की राशि ही देगी।

एक और विवादास्पद मुद्दा फसल कटने के बाद हुए नुकसान के संबंध में है (बीमा का दायरा, सेक्शन-सी Scope of Cover, Section-C)।[53] फसल कटने के बाद हुए नुकसान की क्षतिपूर्ति केवल उन्हीं मामलों में मिलेगी जब पूर्वनिर्धारित आपदा जैसे तूफान, तूफानी बारिश या बिना मौसम की बारिश से फसलों को खेत में ''काटी और फैली'' अवस्था में नुकसान होगा। भण्डारण की हानियाँ इसमें शामिल नहीं हैं।

कागजी कामकाज में भी, इस बीमा के तहत यह ज़रूरी है कि किसान को नुकसान के 48 घंटे के भीतर बीमा कंपनी से संपर्क करना होगा नहीं तो किसी भी प्रकार की राहत नहीं मिलेगी! बीमा पॉलिसी की पूरी अवधि में किसान को किसानी की हर तरह की गतिविधि का लिखित ब्यौरा (लॉग बुक) रखना ज़रूरी है। अपवादों में एक धारा यह भी है कि ''जहाँ अच्छी खेती व कटाई के मान्य तरीकों का पालन नहीं हुआ'' वहाँ किसान राहत का पात्र नहीं होगा। परंतु यह उल्लेख नहीं है कि अच्छी खेती व कटाई के मान्य तरीके कौन से हैं। यह कागजी मुद्दे भी किसानों को बीमा का फ़ायदा लेना मुश्किल बनाते हैं।

---

[52] *https://ccafs.cgiar.org/blog/Farmers-reaping-benefits-climate-insurance-scheme%2520#.WV9NVdOGMb0*

[53] *https://www.iffcotokio.co.in/sites/default/files/download_forms/PMFBY_Policy%20Wording.pdf*

3.3 जलवायु हितैषी कृषि के एक और मामले का अध्ययन

भारत में जलवायु हितैषी खेती के एक मामले को सफलता की कहानी की तरह दिखाया जा रहा है। यह मामला आंध्र प्रदेश में बीमारी-प्रतिरोधी (सिर्फ़ फ्यूसेरियम विल्ट ख्श्नेंतपनउॅपसज, प्रतिरोधी) और जल्दी तैयार होने वाले चने के बारे में है। हालाँकि इस किस्म को आईसीआरआईएसएटी ने 1989 में ही विकसित कर लिया था पर इसे इसके ''जलवायु अनुकूलन'' के लक्षणों के कारण जलवायु हितैषी कृषि का उदाहरण बताया जा रहा है। चने की यह काबुली किस्म आईसीसीव्ही-2 जिसे ''श्वेता'' नाम दिया गया था, इस अवधि में काफी प्रसिद्ध रही है और महाराष्ट्र में 50000 हेक्टेयर से भी ज़्यादा में इसे उगाया गया है। परंतु 90 के दशक के अंत में काबुली चने की एक ज़्यादा भारी और ज़्यादा पैदावार देने वाली आयातित क़िस्म ने इसकी कीमतों को घटा दिया था और किसानों को बुरी तरह नुकसान पहुँचाया था।[54]

यह हाइब्रिड फसलों के उपयोग से होने वाले कई नुकसानों में से एक है। पहले तो हाइब्रिड फसलों के लिये महंगे बीजों, ज़्यादा उर्वरक और कीटनाशक और अधिकांशतः ज़्यादा पानी के कारण ज़्यादा लागत की ज़रूरत होती है। दूसरे, देशी और स्थानीय बीजों की तरह हाइब्रिड बीजों को बार-बार इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। आमतौर पर किसान बीजों को बचाकर अगली

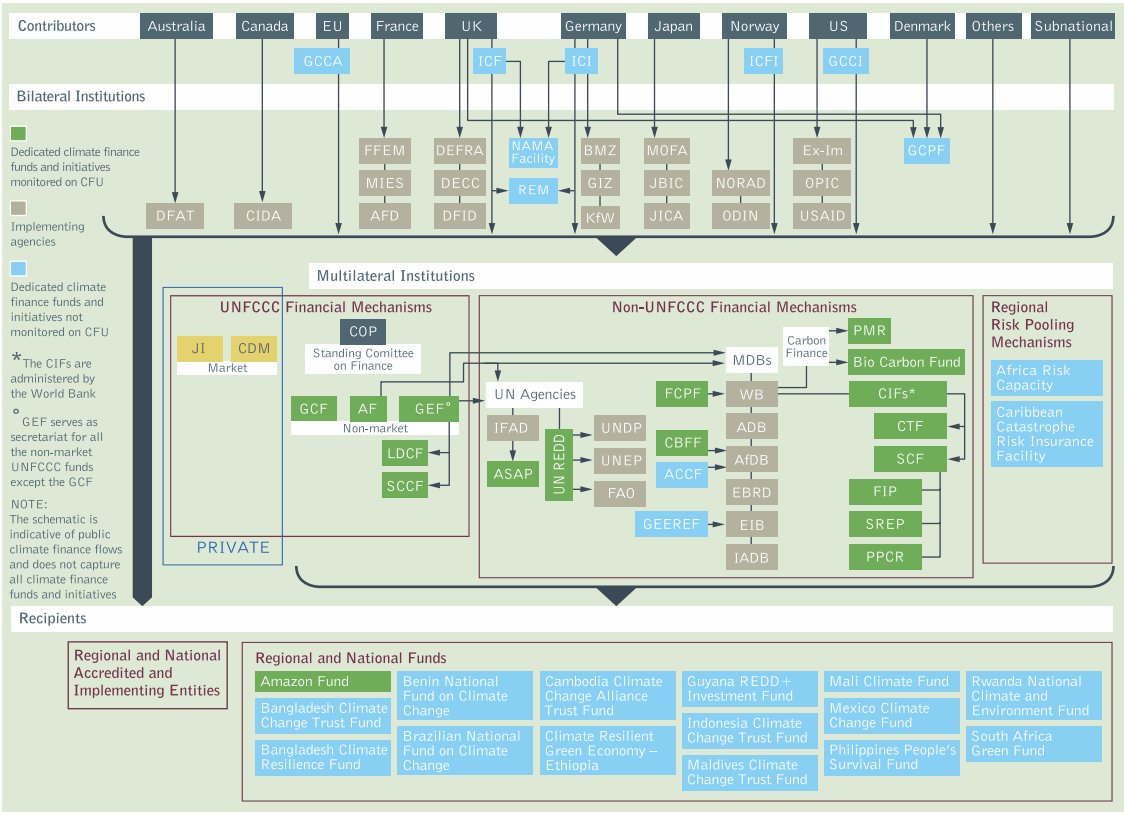

Full form of the Acronyms are given in Annexure 1 on Page 42
Source : The Global Climate Finance Architecture; http://www.climatefundsupdate.org/about-climate-fund/global-finance-architecture

[54] *http://www.thehindu.com/2000/12/07/stories/0807002c.htm*

फसल में बोते हैं पर हाइब्रिड बीजों के साथ यह संभव नहीं है क्योंकि वे एक बार इस्तेमाल के लिये ही तैयार किये जाते हैं। किसान ऐसे बीज बेचने वाली कंपनियों व संस्थाओं पर निर्भर बन जाता है। अंत में, जैसा कि इस ''सफलता की कहानी'' कहे गये मामले से साफ है कि कॉर्पोरेट्स हमेशा ही एक-दूसरे से मुक़ाबले के लिये बीजों की नई-नई क़िस्में विकसित करते रहते हैं और इसका नुकसान अधिकांशतः बाजार-भाव पर निर्भर किसान को होता है। इस कारण हाईब्रिड फसलें किसान को और ज़्यादा कमज़ोर भी बनाती हैं।

3.4 जलवायु हितैषी कृषि के लिये वित्त व्यवस्था : किसका पैसा?

एफएओ के अनुसार जलवायु हितैषी कृषि की वित्त व्यवस्था का प्रमुख स्त्रोत निजी निवेश है। जैसा कि ऊपर बने रेखाचित्र में देखा जा सकता है कि यह निजी निवेश बाजार आधारित तकनीकों जैसे स्वच्छ विकास के तरीके (सीडीएम) और संयुक्त रूप से लागू करने (Joint Implementaion - जेआई) के माध्यम से किया जाता है। इन सबमें सीडीएम समायोजन का सबसे बड़ा तरीका है। जेआई भी सीडीएम की ही तरह काम करता है पर सिर्फ़ विकसित देशों में योजनाओं के समायोजन तक सीमित है। इसी कारण जलवायु हितैषी कृषि के लिये सीडीएम ही प्रमुख रहेगा। सीडीएम से ही जुड़ा हुआ ''अनुकूलन कोष'' भी है जिसकी स्थापना 2001 में ऐसे विकासशील देशों में अनुकूलन के ठोस तरीकों में पूँजी लगाने के लिये हुई थी जो क्योटो प्रोटोकॉल में शामिल हों और जहाँ जलवायु परिवर्तन के विपरीत प्रभावों का जोखिम ज़्यादा हो। अनुकूलन कोष को ज़्यादातर पैसा सीडीएम से ही मिलता है (राजस्व का 2 प्रतिशत)।

3.4.1 स्वच्छ विकास के तरीके (क्लीन डेवलपमेंट मेकेनिज़्म या सी.डी.एम.)

सीडीएम औद्योगीकृत देशों को विकासशील देशों में उत्सर्जन घटाने वाली योजनाओं में निवेश और 'उत्सर्जन में प्रामाणिक कमी' के प्रमाण पत्र अर्जित करने की अनुमति देता है। ऐसा प्रत्येक प्रमाणपत्र 1 टन कार्बन-डाय ऑक्साइड की मात्रा के बराबर होता है। इन प्रमाणपत्रो को कार्बन बाजारों में खरीदा और बेचा जा सकता है। इनका इस्तेमाल औद्योगिक देशों द्वारा क्योटो प्रोटोकॉल के अंतर्गत उत्सर्जन कम करने के लक्ष्यों को पूरा करने में किया जाता है।[55] सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि औद्योगिक देश तब तक प्रदूषण फैला सकते हैं जब तक वे किसी और जगह प्रदूषण कम कर रहे हों। यह तकनीक विकासशील देशों को टिकाऊ विकास में मदद करने और कार्बन समायोजन से उत्सर्जन घटाने के लिये बनाई गई थी पर यह दोनों में से किसी भी लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाई। उदाहरण के लिये 2009 में विश्व का कार्बन बाजार 144 बिलियन अमेरिकी डॉलर का था पर इसका सिर्फ़ 0.2 प्रतिशत ही इस तरह के प्रोजेक्ट से आया था। बाकी 99.8 प्रतिशत सलाहकारों की मोटी फीस और बाजार के सट्टेबाजों ने प्राप्त किया जो अंतरराष्ट्रीय कार्बन बाजार में कार्बन प्रमाणपत्र को व्यापार की वस्तु (Commodities) की तरह खरीदते बेचते हैं। सीडीएम की तकनीकों का झुकाव बड़े कॉर्पोरेट्स की ओर भी है जो इस तरह के व्यापार के खर्चे और कार्बन प्रमाणपत्र लेने के संसाधनों को वहन कर सकें। उदाहरण के लिये 2007 में मलेशिया के सभी

[55] क्योटो प्रोटोकॉल एक अंतरराष्ट्रीय समझौता है जो संयुक्त राष्ट्र संघ के जलवायु परिवर्तन पर हुए फ्रेमवर्क सम्मेलन (UNFCCC) से जुड़ा हुआ है और जो अपने सदस्यों को कार्बन उत्सर्जन कम करने के लक्ष्य बनाता और अंतरराष्ट्रीय नियमों के द्वारा उनका पालन करवाता है। अधिक जानकारी के लिए देखें: *http://unfccc.int/kyoto_protocol/items/2830.php*

मान्यता प्राप्त सीडीएम प्रोजेक्ट में से 90 प्रतिशत ने ताड़ के तेल की में मिल इस्तेमाल किये जाने वाले तत्वों से गर्मी पैदा करने के लिये तेल बनाने वाली कंपनियों कारगिल और ए.डी.एम. (आर्चर डेनियल्स मिडलैण्ड) को फायदा पहुँचाया।

कार्बन ज़ब्त करने के संबंध में वैज्ञानिक जानकारी और सबूत कम होने के कारण खेती अभी तक सीडीएम का बड़ा हिस्सा नहीं है। हालाँकि बड़े कृषि-उद्योग बिना जुताई की खेती ओर बायो-चार को मिट्टी में कार्बन ज़ब्त करने के कारण सीडीएम की तरह मान्यता दिलाने की कोशिश कर रहे हैं। संयोगवश या अन्यथा, यह एकदम वही तकनीकें हैं जिन्हें जलवायु हितैषी कृषि के अंतर्गत उत्सर्जन कम करने वाली तकनीकें कह कर बढ़ावा दिया जा रहा है। अगर इन तकनीकों को सीडीएम के रूप में मान्यता मिलती है तो इसका मतलब कंपनियों के लिये करोड़ों का फ़ायदा और पर्यावरण, छोटी जोत वाले किसान और विकासशील देशों में कृषि क्षेत्र के लिये अलग-अलग नतीजे होगा।

पहले तो इसका मतलब बिना जुताई की खेती और बायो-चार जैसी तकनीकें होगा जिनके कार्बन ज़ब्त करने के दावे आधी-अधूरी वैज्ञानिक जानकारी पर आधारित हैं। इन सबको उत्सर्जन कम करने के नाम पर बहुत अधिक पूँजी मिलेगी और बड़े कृषि-उद्योगों को मिट्टी के कार्बन बाज़ार की संभावनाओं के कारण बहुत बड़े निवेश। दूसरा, इसका मतलब यह होगा कि बड़े कृषि उद्योग और उनकी औद्योगिक कृषि की तकनीकों को मिट्टी के कार्बन बाज़ार और सीडीएम का फ़ायदा मिलेगा जबकि यही जलवायु परिवर्तन के मुख्य कारक हैं। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि जलवायु हितैषी कृषि का पूरा मसौदा ही अंतरराष्ट्रीय कार्बन बाज़ार जैसे मिट्टी के कार्बन का बाज़ार, आरईडीडी, आरईडीडी-प्लस आदि के माध्यम से विकसित देशों के अपने कार्बन का समायोजन करने की संभावना के इर्द-गिर्द तैयार किया गया। जलवायु हितैषी कृषि कार्बन समायोजन के साथ ही आई।[56]

छोटे किसानों के लिये इसका मतलब यह होगा कि उनके ऊपर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का जोख़िम बना रहेगा। खेती की तकनीकों में इसी तरह की औद्योगिक खेती का दबदबा रहेगा जो मिट्टी, पानी, बीजों की विविधता और उन संसाधनों के लिये ख़तरा है जिन पर छोटी जोत वाले किसान निर्भर हैं। इन तकनीकों का प्रसार कॉर्पोरेट्स और सरकारों द्वारा ग्रामीण परिवारों और समुदायों को उनकी अपनी जमीन, जंगल और पानी के अधिकारों से वंचित करने के लिये किया जा रहा है। इससे आगे चल कर जमीन का वस्तुकरण होगा और कृषि-उद्योगों द्वारा जमीन पर कब्ज़ा करने की प्रवृत्ति को भी बढ़ावा मिलेगा।

इस तरह जलवायु हितैषी कृषि सिर्फ़ बड़े कृषि-उद्योगों के लिये मुनाफ़ा कमाने और कार्बन उद्योगों को कार्बन बाज़ार में ऊपर उठाने का एक और तरीका है। इस तरह से देखने पर यह अचरज की बात नहीं रहती कि क्यों इतने सारे कृषि-उद्योग और कॉर्पोरेट्स जलवायु हितैषी कृषि को बढ़ावा देने वाली संस्थाओं को दान दे रहे हैं और खुद भी इसे आगे बढ़ा रहे हैं।

---

[56] *http://www.actionaid.org/2011/12/agriculture-durban-world&gt*

3.4.2 सीडीएम : भारत का मामला

चीन के 5074 सीडीएम कार्यक्रमों के बाद भारत ही 1094 कार्यक्रमों और 89191566 'उत्सर्जन में प्रामाणिक कमी' (ब्मतजपपिमक म्उउपेपवद त्मकनबजपवद . सीईआर) के प्रमाण पत्रों के साथ दूसरे स्थान पर है। इनमें से अधिकतर ऊर्जा के क्षेत्र में हैं और कुल 1000 सीडीएम (90 प्रतिशत से ज़्यादा) निजी कंपनियों द्वारा पंजीकृत हैं।[57] वैसे तो यह समझा जाता है कि सीडीएम कार्यक्रम विकासशील देशों को स्वच्छ ऊर्जा की ओर ले जाने में मदद करेंगे परंतु व्यवहार में सच्चाई इसके बिल्कुल ही उलट है। ''भारतीय सीडीएम : कॉर्पोरेट प्रदूषण को छूट देना और वैध बनाना'' नाम की रिपोर्ट में भारत के अलग-अलग हिस्सों में मौजूद सीडीएम कार्यक्रमों का विश्लेषण किया गया है। यह रिपोर्ट जहाँ सीडीएम लागू किये गये वहाँ कंपनियों द्वारा सीडीएम मान्यता लेने जमा किये गये प्रोजेक्ट डिजाइन डॉक्यूमेंट (पीडीडी) में किये गये दावों और सीडीएम के प्रभावों की लेखकों द्वारा समझी गई ज़मीनी हक़ीकत की तुलना करती है। उदाहरण के लिये, 2003 में भूषण पॉवर एण्ड स्टील लिमिटेड (बीपीएसएल) ने संभलपुर जिले के थेल्कोलोई गाँव में स्टील कारख़ाना लगाया। 2005 और 2006 में कंपनी ने इस कारख़ाने में वेस्ट-हीट-रिकवरी (डब्ल्यूएचआर) व्यवस्था लगाई। इस व्यवस्था ने उनका ब्लैक-कार्बन उत्सर्जन कम कर दिया (कोयले की जगह ईंधन-गैस से बिजली बनाकर) और वे सीडीएम बनने के योग्य हो गये। 2007 में सरकार में इस कंपनी को 10 साल (2009-2019) के लिये सीडीएम मान्यता दे दी। यह कारख़ाना हर साल बीपीएसएल को 333841 'उत्सर्जन में प्रामाणिक कमी' के प्रमाणपत्र देगा जिन्हें कार्बन बाजार में बेचा जा सकता है।

उनके पीडीडी के अनुसार यह कारखाना साफ पर्यावरण, रोजगार के अवसर और तकनीकी और देखरेख की क्षमताएँ विकसित कर स्थानीय निवासियों का जीवन-स्तर ऊपर उठायेगा। मगर ज़मीनी हक़ीकत के अनुसार कारख़ाने ने ग्रामीणों के लिये बहुत सी समस्याएँ पैदा की हैं। गाँव के पास का जंगल जो ग्रामीणों के लिये जीवन-यापन और खाद्य-सुरक्षा का स्त्रोत हुआ करता था, उस पर कंपनी ने अवैध रूप से कब्जा कर लिया है। जंगल का इस्तेमाल राख को फेंकने के लिये किया जा रहा है। स्वच्छ ऊर्जा की जगह कारख़ाने की चिमनियाँ काला धुआँ उगलती हैं। स्थानीय लोगों के विरोध करने पर कंपनी ने दिन में धुआँ छोड़ना बंद कर दिया पर सूरज ढलने के बाद काला धुआँ छोड़ना अभी भी जारी है। इस कारख़ाने ने आसपास के पूरे इलाके को प्रदूषित कर दिया है। जहाँ कभी हरियाली हुआ करती थी उस पूरे इलाके को अब कोयले की धूल की मोटी परत नें ढँक लिया है। रोजगार देने के नाम पर कंपनी ने सिर्फ़ 7-8 परिवारों के सदस्यों को ठेके पर रखा है, जहाँ वे 100 रुपये या इससे भी कम पर 12 घंटे काम करते हैं।

सीडीएम कार्यक्रमों का इसी तरह लगभग एक जैसा ही मज़मून रहा है। ग्रामीणों, कर्मचारियों और यहाँ तक कि प्रबंधन को भी सीडीएम और प्रोजेक्ट के बारे में कम जानकारी होना, मजदूरों का शोषण, पर्यावरण और जल-स्त्रोतों का प्रदूषण, सार्वजनिक संपत्ति पर अतिक्रमण और कब्ज़ा, अलग-अलग तरह के प्रदूषण से स्थानीय लोगों को होने वाली बीमारियाँ, पानी और हवा के प्रदूषण के कारण खेती का नुकसान, कंपनियों द्वारा अंधाधुंध इस्तेमाल के कारण जलस्तर में कमी आदि प्रमुख मुद्दे लगभग सभी जगह समान रहे हैं।

[57] *http://www.cdmindia.gov.in/approved_projects.php*

इससे साफ होता है कि कंपनियों द्वारा तैयार की जाने वाली रिपोर्टें और उनके किये गये दावे झूठ पर आधारित होते हैं। अक्सर ही, इन रिर्पोट्स में उत्सर्जन संबंधी तथ्यों को छोड़ दिया जाता है।

अधिकांश सीडीएम कार्यक्रमों ने जलवायु परिवर्तन के मुद्दे को और गहरा बनाया है और नई परेशानियाँ पैदा की हैं। सीडीएम कार्यक्रमों की देखरेख या नियंत्रण के लिये कोई संस्था न होने कारण कंपनियाँ यह झूठा दावा भी कर सकती हैं कि वे उत्सर्जन कम कर रही हैं। सीडीएम ने भारत में कंपनियों को प्रदूषण के असरों की कोई जवाबदारी लिये बिना प्रदूषण से फ़ायदा उठाने का मौका दे दिया है। यह बात उनके बैंक दस्तावेजों से भी साफ है। 2008 में जिंदल स्टील के कर्नाटक कारख़ाने ने उनके तथाकथित कम उत्सर्जन के १३ लाख सीईआर बेच कर 1100 करोड़ रुपये कमाये।[58] सिर्फ़ साल 2007-08 में ही, गोदावरी उर्वरक और रासायनिक लिमिटेड समूह की कार्बन से कमाई उनकी कुल कॉर्पोरेट कमाई की तीन गुना थी (करों के बाद)।

3.4.3 कृषि-ईंधन

कृषि ईंधन पौधों, वनस्पतियों या कृषि अवशेष से निकाले गये तरल ईंधन हैं। कृषि-ईंधन के दो प्रमुख प्रकार हैं। एथानोल, जिसे मीठी गन्ने, गुड़ के शीरे या मीठे ज्वार जैसे कच्चे माल से निकाला जाता है और बायो-डीज़ल, जिसे वनस्पति तेल जैसे ताड़ का तेल, सोया तेल या जानवरों की चर्बी से निकाला जाता है।

बढ़ती हुई तेल की दरों, तेल के निर्यात पर निर्भरता तथा जैव-ईंधन से पर्यावरण को होने वाले प्रभावों को देखते हुए विश्व के नेताओं ने कृषि-ईंधन का स्वागत जलवायु परिवर्तन और ऊर्जा की आत्मनिर्भरता के संबंध में एक समाधान के रूप में किया था। यह सब 2000 के दशक के शुरूआत की बात है। तब से ही, कई देशों और कॉर्पोरेट्स ने बड़ी मात्रा में संसाधनों का निवेश कृषि-ईंधन के क्षेत्र में किया है। यह निवेश प्रधानतः लाखों हेक्टेयर जमीन पर कृषि-ईंधन पैदा करने वाली फसलें लगा कर किया गया है। उदाहरण के लिये, कोलम्बिया में ताड़ के बाग़ान थोड़े-बहुत ही थे पर अब ये 70 लाख हेक्टेयर जमीन पर हैं। इससे भी आगे बढ़कर, 2016 में कोलम्बिया के कृषि मंत्रालय ने दावा किया है कि अगले ३ वर्षों में वह इन्हें 80 लाख हेक्टेयर तक बढ़ायेगा।[59] इण्डोनेशिया में 80 लाख हेक्टेयर में ताड़ के बागान हैं और वह ताड़ के तेल का सबसे बड़ा उत्पादक और निर्यातक है। ऐसी उम्मीद की जा रही है कि 2020 तक इण्डोनेशिया में यह बागान 130 लाख हेक्टेयर तक बढ़ जाएँगे।[60] इस तरह के बागान सामान्यतः सरकार या बहुराष्ट्रीय कंपनियों के होते हैं। इण्डोनेशिया के बागानों का आधा हिस्सा विल्मार ग्रुप और साइनर मार्स जैसी कंपनियाँ नियंत्रित करती हैं। भारत में भी स्थिति कोई अलग नहीं है। यहाँ के सबसे बड़े उत्पादक गोदरेज के पास आंध्रप्रदेश, तेलंगाना, तमिलनाडु, गोवा, कर्नाटक, महाराष्ट्र और मिजोरम में फैले हुए 55000 हेक्टेयर के बागान हैं।[61] वर्तमान राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (एनडीए) सरकार का रवैया इस उद्योग के प्रति

---

[58] http://base.socioeco.org/docs/the_indian_cdm.pdf

[59] http://www.telesurtv.net/english/news/Colombia-to-Intensify-Cultivation-of-Palm-Oil-20160208-0039.html

[60] https://www.indonesia-investments.com/business/commodities/palm-oil/item166?

[61] http://www.godrejagrovet.com/oil-palm-plantations.aspx

सहयोगात्मक रहा है। सरकार ने इस क्षेत्र में 100 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) की मंजूरी दी है और ताड़ के बागानों की ज़मीन के सीलिंग संबंधी प्रतिबंधों को कम किया है।[62] तिलहन और ताड़ के तेल के लिये राष्ट्रीय मिशन (एनएमओओपी) के अनुसार इसका लक्ष्य कॉर्पोरेट्स को बढ़ावा देकर और ऊसर ज़मीन का इस्तेमाल कर बड़े स्तर पर ताड़ के तेल के उत्पादन को बढ़ाना है। इसके लिये 2016-17 का लक्ष्य ताड़ की खेती को 1.25 लाख हेक्टेयर अतिरिक्त ज़मीन पर बढ़ाना है।[63]

● ***जैव-ईंधन से जुड़े मुद्दे***

कहने की ज़रूरत नहीं है कि इन कृषि-ईंधनों के लिये जिस तरह इन बागानों के द्वारा कॉर्पोरेट्स ने एकफसलीय खेती को बढ़ावा दिया है उसके अनेक गंभीर प्रभाव पर्यावरण के साथ-साथ उन संसाधनों पर पड़ेंगे जिन पर किसान अपने जीवन-यापन के लिये निर्भर हैं। जलवायु हितैषी कृषि और कृषि-ईंधन छोटे स्तर के खाद्य उत्पादकों की बचाव करने, सक्षम होने और खुद ही अनुकूलन करने की क्षमता को भी ख़त्म कर रहे हैं और कॉर्पोरेट्स और व्यापारियों को गाँव के लोगों की ज़मीन, जंगल, तटों और दूसरे कुदरती संसाधनों पर कब्ज़ा करने का मौका दे रहे हैं। पहले तो इन बड़े-बड़े बागानों को बनाने के लिये जंगलों को साफ करना पड़ेगा जो ग्रीन हाउस गैसों का स्तर बढ़ा देगा।[64] दूसरे, इन बागानों के लिये लाखों की तादाद में छोटी जोत वाले किसानों और स्थानीय समुदायों की बिना उनकी मर्जी के ज़मीन से बेदख़ली तो जैसे इन कंपनियों के लिये एक नियम बन चुकी है। कृषि-ईंधन के बागानों की बढ़ती संख्या के साथ ज़मीन संबंधी विवाद भी बढ़े हैं। तीसरे, बागानों की मालिक कंपनियों द्वारा झूम (काटना और जलाना) तकनीक के कारण ज़मीन का कटाव और खालीपन बढ़ा है। पानी की ज़रूरत ज़्यादा होने के कारण यह कई विकासशील देशों में पहले से मौजूद पानी की समस्या को भी बढ़ा रहा है। अंत में, कृषि-ईंधन के बागान खाद्य फसलों की जगह कम कर रहे हैं जो कई स्थानीय समुदायों और छोटे किसानों के लिये खाद्य-सुरक्षा और जीवन-यापन का स्त्रोत हैं। कृषि-ईंधन के कारण खाद्य सुरक्षा का मुद्दा भी गहरा गया है क्योंकि विकसित देशों में इन बागानों को सरकार से काफी छूट मिलती है जिससे खेती के लिये फसल और ईंधन के लिये फसल में संतुलन बिगड़ रहा है जिससे विश्व खाद्य कोष में कमी आ रही है और खाद्य-सुरक्षा का मसला पैदा हो रहा है।

इस तरह कृषि ईंधन उसी जलवायु परिवर्तन के कारण बन गये हैं जिसका समाधान करने के लिये कभी उन्हें बढ़ावा दिया गया था। इस समस्या को सुलझाने की जगह उन्होंने इसे और उलझा दिया है। कृषि-ईंधनों ने उन संसाधनों का उपभोग कर जिन पर स्थानीय समुदाय और छोटी जोत वाले किसान निर्भर हैं खाद्य सुरक्षा की समस्या में इज़ाफ़ा किया है।

● ***भारतीय मामला : रतनजोत में तेजी, मंदी.... और अब वापसी ?***

❖ ***तेजी***

भारत में कृषि-ईंधन के स्त्रोत के रूप में रतनजोत पर सबसे ज़्यादा ध्यान दिया गया। वैसे तो रतनजोत से कृषि-ईंधन बनाना कोई नई बात नहीं है और ग्रामीण समुदायों द्वारा इसका उपयोग पहले से ही किया जा

---

[62] *http://pib.nic.in/newsite/PrintRelease.aspx?relid=160971*

[63] *http://pib.nic.in/newsite/PrintRelease.aspx?relid=160971*

[64] *http://blog.ucsusa.org/doug-boucher/whos-responsible-for-palm-oil-deforestation-small-farmers-or-big-companies-951*

रहा था परंतु निजी कंपनियों के साथ सरकार का ध्यान इस पर 2000 के दशक की शुरूआत में तभी गया जब पूरे विश्व में कृषि-ईंधनों की धूम थी। 2003 में राष्ट्रीय जैव-डीज़ल मिशन की शुरूआत हुई और यह प्रस्ताव किया गया कि पेट्रोलियम के साथ मिलाई जाने वाली कृषि-ईंधन की मात्रा 2012 तक 5 प्रतिशत से बढ़ाकर 20 प्रतिशत कर दी जानी चाहिए। जैव-ईंधनों के बारे में राष्ट्रीय नीति को 2009 में मंजूरी मिल गई और इसका लक्ष्य ''यह सुनिश्चित करना कि बाज़ार में जैव-ईंधन की एक न्यूनतम मात्रा मांग की पूर्ति करने हमेशा तैयार होनी चाहिए। जैव-ईंधनों के बारे में राष्ट्रीय नीति के अंतर्गत 2017 तक बायो-डीज़ल और बायो-एथानोल दोनों ही जैव-ईंधनों की 20 प्रतिशत मात्रा मिलाने के एक सूचक लक्ष्य का प्रस्ताव किया गया।'' इस नीति को पढ़कर यह स्पष्ट हो जाता है कि सरकार का प्रमुख लक्ष्य ''सबसे तेज बढ़ती अर्थव्यवस्था'' के लिये राष्ट्रीय ऊर्जा सुरक्षा प्राप्त करना था क्योंकि भारत बहुत हद तक अपनी ऊर्जा ज़रूरतों के लिये तेल के आयात पर निर्भर है। कम उत्पादन लागत, सस्ती मज़दूरी, संसाधनों की बहुतायत, ढीले पर्यावरण नियंत्रण और इसके साथ अधिक से अधिक रतनजोत उत्पादन के लिये एक-दूसरी से प्रतिस्पर्धा कर रही राज्य सरकारों द्वारा दिये जा रहे फ़ायदों के कारण कई भारतीय और विदेशी कंपनियों ने रतनजोत की खेती में भारी निवेश किया। इसने रिलायंस इंडस्ट्री के साथ आंध्रप्रदेश सरकार और हिन्दुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन के साथ महाराष्ट्र राज्य कृषि कॉर्पोरेशन लिमिटेड, इस तरह का कॉर्पोरेट-राज्य सरकार गठबंधन बना दिया।

❖ *मुद्दा : खाने के लिये फसलें या ईंधन के लिये फसलें*

इस सबके बाद भी कृषि-ईंधनों के माध्यम से सबसे तेज बढ़ती अर्थव्यवस्था की ऊर्जा की ज़रूरत मिटाने की समस्याएँ बहुत हैं। पहले तो, भारत की बढ़ती हुई ऊर्जा ज़रूरतों के लिये तेल की जगह कृषि-ईंधनों का इस्तेमाल वास्तविक और टिकाऊ नहीं है। एक उदाहरण के लिये, यदि यूनाइटेड किंगडम की सारी ज़मीन पर भी कृषि-ईंधनों को इस्तेमाल किया जाये तब भी वह यूके की सभी कारों के लिये काफी नहीं होगा। अमेरिका में यदि सारे मक्के और सोया की जगह कृषि ईंधन लगाये जाये तब भी यह सिर्फ़ देश की पेट्रोल की ज़रूरत का 12 प्रतिशत और डीज़ल की ज़रूरत का 6 प्रतिशत ही होगा।[65]

रतनजोत के साथ जुड़ा हुआ एक और विवादास्पद मुद्दा ज़मीन विवाद और खाद्य सुरक्षा हैं। हालाँकि जैव-ईंधनों के बारे में राष्ट्रीय नीति में यह उल्लेख है कि खाद्य-सुरक्षा के मुद्दे से बचने के लिये कृषि-ईंधनों को सिर्फ़ ऊसर ज़मीन पर उगाया जाये जो खेती करने के लिये उपयुक्त नहीं हैं। इस नीति में इससे आगे कहीं भी ऊसर ज़मीन को परिभाषित नहीं किया गया है और व्यवहार में ऐसे कई मामले हैं जहाँ चारागाह, सामुदायिक ज़मीन और कई बार खेती योग्य ज़मीन को भी ऊसर ज़मीन के रूप में वर्गीकृत करके वहाँ कृषि-ईंधन की अनुमति दी गई। उदाहरण के लिये राजस्थान में 'ओरण' को राज्य द्वारा ऊसर ज़मीन के रूप में वर्गीकृत कर दिया गया, जो कि परंपरागत तरीके से पूजनीय हैं और राजस्थान के 75 लाख चरवाहों की जीवनरेखा हैं। उड़ीसा में निजी निवेशक जमीन हासिल करने के लिये गाँवों को धोखा दे

[65] *https://www.grain.org/article/entries/597-stop-the-agrofuel-craze*

रहे हैं।[66] जीआरएआईएन के अनुसार मध्यप्रदेश के किसानों इस बात से चिंतित हैं कि उन्हें रतनजोत के लिये मजबूर किया जायेगा और अपनी ज़मीन का और कोई इस्तेमाल नहीं करने दिया जायेगा। चूंकि रतनजोत को पकने में 3 साल लगते हैं इसलिये छोटे किसान जो अपने जीवन-यापन के लिये ज़मीन पर ही निर्भर हैं, उनके लिये यह संभव नहीं है कि वे अपनी ज़मीन कृषि-ईंधन उगाने के लिये किसी निजी कॉर्पोरेशन को दे दें।

इन बड़े बागों ने भारत के कई हिस्सों में पहले से मौजूद पानी के संकट को और बढ़ा दिया है। इन रतनजोत में पानी ज़्यादा लगने के कारण पंजाब, कर्नाटक, महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश की सरकारों ने ड्रिप सिंचाई के लिये छूट देने का प्रस्ताव रखा था। अन्य प्रदेशों जैसे तमिलनाडु में उद्योगों के प्रतिनिधियों ने भी ऐसी छूट लेने के लिये प्रयास किये थे। छोटी जोत वाले किसानों के लिये ऐसी परिस्थितियाँ नुकसान ही नुकसान देती हैं जहाँ उन्हें रतनजोत की खेती के लिये विवश किया जाता है पर वे लम्बे समय में ड्रिप सिंचाई को भी वहन नहीं कर सकते। ऐसी जगहों पर जहाँ सूखा पड़ना आम है समस्या और भी ज़्यादा है।

❖ ***मंदी***

शुरूआत में रतनजोत को सबसे उपयुक्त फसल के रूप में यह कह कर घोषित गया कि इसमें पानी और ध्यान रखने की ज़रूरत कम है और इसे शुष्क और अर्द्ध-शुष्क इलाकों में भी उगाया जा सकता है। परंतु नई वैज्ञानिक खोजों से यह पता चला कि रतनजोत को पहले सोचे गये से बहुत ज़्यादा पानी की ज़रूरत होती है और भले ही इसे शुष्क और अर्द्ध-शुष्क इलाकों में उगाया जा सकता है पर अच्छी पैदावार के लिये इसे सही मिट्टी, कीटनाशकों और खरपरवारनाशकों की ज़रूरत होती है।

भेड़चाल में रतनजोत उगाने में लगी सरकारों और निजी कॉर्पोरेट्स को यह बाद में अहसास हुआ कि उनके निवेशों से अधिक फ़ायदा नहीं है क्योंकि रतनजोत के बागों में उम्मीद से कम ही बीजों की पैदावार हुई। इसे दीमकों के हमले और पानी रुक जाने से भी खतरा था। पेट्रोल और रतनजोत-ईंधन की लागतों में फर्क बहुत ज़्यादा नहीं था इसलिये इससे ज़्यादा मुनाफ़ा कमाने की गुंजाइश भी नहीं थी, इसलिये इसे व्यवसायिक रूप से जारी रखना संभव नहीं था। 2011 तक भारत में 85 प्रतिशत किसानों ने रतनजोत की खेती बंद कर दी।[67] हालाँकि सरकार ने पूरे देश में 2017 तक रतनजोत-ईंधन उपलब्ध कराने की योजना बनाई थी पर इस कार्यक्रम को 2013 में कारगर न होने की वजह से बंद करना पड़ा।[68]

❖ ***फिर से वापसी ?***

तब से अब तक रतनजोत को लेकर नई खोजें हो चुकी हैं। एक कंपनी एसजी बायोफ्यूल्स को 'विशेष रतनजोत हाइब्रिड' विकसित करने के कारण रतनजोत का उद्धारक माना जाता है। इस कंपनी ने ब्राजील,

---

[66] Agrofuels in India, private unlimited, Seedling, GRAIN, April 2008

[67] https://www.academia.edu/13293185/The_Extraordinary_Collapse_of_Jatropha_as_a_Global_Biofuel

[68] http://timesofindia.indiatimes.com/city/vadodara/jatropha-not-viable-biofuel-scientists-eye-alternatives/articleshow/46732267.cms

भारत और अन्य देशों में 250000 एकड़ रतनजोत उगाने के लिये समझौते भी कर लिये हैं।[69] यह दावा किया जाता है कि हाइब्रिड बीज अधिक पैदावार दे सकता है और भारत के उच्च तापमान को सहन कर सकता है। हालाँकि ऐसे बीजों और इनके साथ आने वाली तकनीकों के छोटी जोत वाले किसानों, हाशिये के समुदायों, पर्यावरण और संसाधनों पर क्या प्रभाव होंगे यह विचार करना बहुत ज़रूरी है। अपेक्षित ध्यान न देने के कारण इन सभी को पहले ही बहुत कुछ भुगतना पड़ा है। सरकारों और उनके साथ शामिल निजी कंपनियों को यह पक्का करना चाहिए कि ऐसा दोबारा न हो।

3.4.4. सीआरआईएसपीआर (CRISPR) तकनीक कैस 9

सीआरआईएसपीआर (Clustered Regularly Interspaced Short Palindromic Repeats) या एक नये तरह की प्रजनन तकनीकि है। इसके ज़रिये आनुवांशिकी बदलाव कर 'जलवायु हितैषी' खेती की जाएगी। इस तकनीकि से किसी भी जीवित जीव या पौधे में जीन्स यानि वंशाणुओं (genes) में तब्दीली की जा सकती है। कैस 9 नामक एंजाइम के केन्द्रक द्वारा डीएनए की श्रृंखला में तकनीकि के ज़रिये कुछ घटाया, बढ़ाया या संपादित किया जा सकता है। सीआरआईएसपीआर-कैस 9 जैसी तीव्र गति वाली जीन्स बदलने में सक्षम तकनीकों के अविष्कार ने कृत्रिम जीवविज्ञान उद्योगों में बहुत तेज बदलाव लाया है। वे पहले जैव रिएक्टर और उसके हिस्से बनाया करते थे लेकिन अब उनका अधिक ज़ोर कृत्रिम तरह से पैदा की जाने वाली फसलों (Engineered crops), इसी किस्म के जीव-जंतुओं के उत्पादन पर है जिसे पर्यावरण में या तो खेती के उपयोग के लिए जारी किया जाए या फिर 'संरक्षण' के मक़सद से।

इसके पहले आनुवांशिकी इंजीनीयरिंग पर आधारित जीएमओ (Genetically Modified Organism) की तकनीक आई थी लेकिन वह काफ़ी विवादास्पद रही थी। इस तकनीक के हिमायतियों का दावा है कि ये जीएमओ जैसी तकनीक नहीं है क्योंकि इसमें किसी भी दूसरे का डीएनए किसी अन्य जीवित तंत्र में मिलाया नहीं जाता है। हालाँकि ये तकनीक मात्र पाँच वर्ष पहले ही आई है लेकिन कृषि व्यापार में संलग्न कंपनियाँ और राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय कृषि शोध केन्द्र इसमें अपनी गहरी दिलचस्पी जाहिर कर चुके हैं। सितंबर, 2016 में ड्यूपोंट और सिम्मिट ;क्नच्वदज दंक ब्डडलल्द्ध कंपनियों ने आपस में एक समझौता किया जिसे मास्टर एलायंस एग्रीमेंट कहा गया। सिम्मिट सीजीएआइआर का भी हिस्सा है। इसमें कहा गया कि इस समझौते से वे संयुक्त रूप से पौधों में सीआरआईएसपीआर-कैस 9 की पौधों के प्रजनन की उन्नत तकनीक के प्रयोग से फसलों की परिमार्जित किस्में विकसित करेंगे। सिम्मिट के महानिदेशक मार्टिन क्रॉफ के अनुसार, 'ड्यूपोंट पायोनीयर के साथ इस समझौते से हमें जलवायु और बीमारियों के प्रकोप को झेल सकने वाली किस्में ज़्यादा तेज़ी से विकासशील दुनिया में छोटे किसानों तक ले जाने का मौका मिलेगा।''[70]

भारत में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) के तहत राष्ट्रीय बायोटेक्नोलॉजी शोध केन्द्र

[69] *https://www.aiche.org/chenezted/2014/01/how-one-company-saved-jatropha-biofuel-disaster*

[70] *http://www.cimmyt.org/press_release/dupont-pioneer-and-cimmyt-form-crispr-cas-publicprivate-partnership/*

सीआरआईएसपीआर-कैस 9 का इस्तेमाल सरसों पर उसकी उत्पादकता बढ़ाने के लिए करता आ रहा है।[71] यही नहीं, राष्ट्रीय कृषि विज्ञान कोष (National Agriculture Science Fund) ने निजी और सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा चावल में सीआरआईएसपीआर-सीएएस के प्रयोग की परियोजना में भागीदारी के लिए रुचि अभिव्यक्त की है। इस केन्द्र का एक प्रमुख कार्यक्षेत्र आनुवांशिकी बदलाव के अन्य उपकरणों के साथ ही सीआरआईएसपीआर भी है।[72]

चूँकि जलवायु हितैषी कृषि (Climate Smart Agriculture or CSA) इस बारे में कोई दिशा-निर्देश नहीं देती, इसलिए यह तकनीक भी जलवायु हितैषी कृषि के लिए उपयुक्त मान ली जाएगी और विकासशील देशों में इसको लागू भी कर लिया जाएगा। ड्यूपोंट अपनी ऐसी योजना पहले ही घोषित कर चुका है कि उसकी सीआरआईएसपीआर-सीएएस की पहली परियोजना सबसहारन अफ्रीका के देशों में लागू की जाएगी जहाँ उसका मकसद मक्के की फसल में होने वाली एक बीमारी जो पूरी फसल खराब कर देती है, पर काबू पाना होगा।

यह तकनीक भी प्रयोगशाला से सीधे ज़मीन पर लाई जाने वाली प्रक्रियाओं में एक मिसाल है। ये आसानी से पलटवार भी कर सकती है। सीआरआईएसपीआर के खेती में उपयोग पर जो शोध आदि हुए हैं, वे कितने ही व्यापक क्यों न हों, वो इस अर्थ में सीमित होते हैं कि वो शोध इस तकनीक के केवल एक फसल जैसे केवल मक्का या केवल धान पर असर का ही अध्ययन करते हैं जबकि वास्तविक खेतों में अनेक फसलें होती हैं। अगर एक खेत में एक फसल भी है तो दूसरे में दूसरी या दो से ज़्यादा भी हो सकती हैं। साथ ही खेतों में उगने वाली खरपतवार, मिट्टी और फसल में पाये जाने वाले कीड़े और अन्य जीव व वनस्पतियाँ भी फसल के साथ ही होते हैं। इन सब पर इस तकनीक के क्या असर होंगे, ये प्रयोगशाला के नतीजे हरगिज़ नहीं बता सकते। और ये कल्पना से भी बहुत भयंकर हो सकते हैं। पर्यावरण पर, कुदरती संसाधनों पर, यहाँ तक कि इंसानी जीवन पर भी ऐसी तकनीकों के दीर्घकालिक असर क्या होंगे, इस बारे में बहुत ही कम शोध या तथ्यपूर्ण जानकारी उपलब्ध है। यदि ये तकनीक कामयाब हो जाती है तो यह तय है कि खेती में काम करने वाली बड़ी कंपनियों में से कोई न कोई उस बीज का पेटेंट करवा लेगा। उससे वास्तविक किसानों की बीज तक पहुँच और मुश्किल हो जाएगी। अगर यह तकनीक या फसलों -पौधों की आनुवांशिकी में ये बदलाव नाकाम रहता है तो भी ये तय है कि उसका खामियाजा आखिर में किसान को ही झेलना होगा। यह भी मुमकिन है कि इस नई तकनीक के असर केवल औद्योगिक खाद्य श्रृंखला पर ही न पड़ें, बल्कि बाड़ पार करके वो किसानों के खाने के तंत्र व उसके इर्द-गिर्द के पारिस्थितिकी तंत्र तक भी पहुँच जाएँ। ये नई प्रजनन तकनीकें जैव विविधता और खाद्य सुरक्षा के लिए टर्मिनेटर बीज (मात्र एक फसल देने लायक बीज) से ज़्यादा बड़ा खतरा साबित हो सकती हैं।

एक अन्य आशंका ये भी है कि सीआरआईएसपीआर तकनीक खेती में कार्यरत कंपनियों को उन नियमों

---

[71] *http://www.nrcpb.res.in/node/256*

[72] *http://www.icar.org.in/nfbsfara/priority.htm*

और नियंत्रणों में बच निकलने के चोर रास्ते भी दे सकती है जो सरकार व अन्य एजेंसियों द्वारा आनुवांशिक परिवर्तन करने वाले बीजों या अन्य जैव उत्पादों पर लगाये जाते हैं जबकि कायदे से आनंवांशिकी बदलाव वाले सभी उत्पादों को कड़ी और सूक्ष्म जाँच से गुजरना चाहिए। यदि इन नियमों से कृषि उद्योग तकनीकि आधार पर बच निकलता है तो छोटे किसानों के लिए तो अपने बीज पर, अपने खाने पर और अन्य संसाधनों पर किसी भी प्रकार का संप्रभु नियंत्रण बिल्कुल ही मुश्किल हो जाएगा।

Annexure : 1

Acronyms from page 32

Implementing Agencies and Institutions

AfDB - African Development Bank

ADB - Asian Development Bank

AFD - French Development Agency

BMZ - Federal Ministry for Economic Cooperation and Development

CIDA - Canadian International Development Agency

DECC - Department of Energy and Climate Chage

DEFRA - Department for Environment, Food and Rural Affairs

DFAT - Department of Foreign Affairs ad Trade (Australia)

DFID - Department for International Development

EBRD - European Bank for Reconstruction and Development

EIB - European Investment Bank

Ex-Im - Export-Import Bank of the United States

FAO - Food and Agriculature Organisation

FFEM - French Global Environment Facility

GIZ - German Technical Cooperation

IADB - Inter American Development Bank

IFAD - International Fund for Agricultural Development

JBIC - Japan Bank of International Cooperation

JICA - Japan International Cooperation Agency

KfW - German Development Bank

MIES - Interministerial Taskforce on Climate Change

MOFA - Ministry of Foreign Affairs

NORAD - Norwegian Agency for Development Cooperation

ODIN - Ministry of Foreign Affairs

OPIC - Overseas Private Investment Corporation

UNDP - United Nations Development Programme

UNEP - United Nations Environment Programme

USAID - U.S. Agency for International Development

WB - World Bank

Multilateral funds and Initiatives

AF - Adaptation Fund

ACCF - Africa Climate Change Fund

ASAP - Adaptation for Smallholder Agriculture Programme

CBFF - Congo Basin Forest Fund (hosted by AfDB)

CDM - Clean Development Mechanism (implemented under the Kyoto Protocol)

CIF - Climate Investment Funds (implemented through WB, ADB, AfDB, EBRD, and IADB)

CTF - Clean Technology Fund

FCPF - Forest Carbon Partnership Facility

FIP - Forest Investment Program

GCCA - Global Climate Change Alliance

GCF - Green Climate Fund

GEF - Global Environment Facility

GEEREF - Global Energy Efficiency and Renewable Energy Fund

JI - Joint Implementation (implemented under the Kyoto Protocol)

LDCF - Least Developed Countries Fund

PMR - Partnership for Market Readiness

PPCR - Pilot Program on Climate Resilience

SCCF - Special Climate Change Fund

SCF - Strategic Climate Fund

SREP - Scaling-Up Renewable Energy Program

UNREDD - United Nations Collaborative Programme on Reducing Emissions from Deforestation and Forest Degradation

Bilateral Funds and Initiatives

GCCI - Global Climate Change Initiative (US)

GCPF - Global Climate Partnership Fund (Germany, UK and Denmark)

ICF - International Climate Fund (UK)

ICFI - International Climate Forest Initiative (Norway)

ICI - International Climate Initiative (Germany)

NAMA facility - Nationally Appropriate Mitigation Action Facility (UK and Germany)

REM - REDD Early Movers (Germany and UK)

4. जलवायु हितैषी कृषि के असर

4.1 बिना किसानों की खेती

जलवायु हितैषी खेती में कृषि व्यापार करने वाली बड़ी-बड़ी कंपनियाँ और निजी पूँजी का शामिल होना तो ज़ाहिर ही है। जलवायु हितैषी खेती के तहत उठाये गए अनेक कदम सीधे या अप्रत्यक्ष रूप में इन्हीं कंपनियों और उनके गठबंधनों से फंड हासिल करते हैं। इसी वजह से जलवायु हितैषी खेती या सीएसए में की जाने वाली खेती की प्रक्रियाएँ और विकास किसानों की ज़रूरत के लिहाज से नहीं, बल्कि खेती में व्यापार करने वाली कंपनियों, उर्वरक निर्माता और जैव तकनीक बनाने वाली कंपनियों तथा कार्बन के बाज़ार के मुनाफ़े को ध्यान में रखकर बनाई जाती हैं। किसानों को और उनके परंपरागत ज्ञान को शामिल करने के बजाय जलवायु हितैषी खेती ऐसी तकनीकें अमल में लाती है जो किसानों को कम से कम शामिल करती हैं। जलवायु हितैषी खेती के लिए यही 'हितैषी' होना है। इसका एक उदाहरण वियतनाम में फुजित्सु कंपनी द्वारा विकसित किया गया सब्ज़ी का एक खेत है। फुजित्सु कंपनी एक सूचना प्रसारण तकनीक कंपनी है। अपने आप में यही तथ्य मज़ेदार है कि एक सब्ज़ी का खेत एक सूचना संचार तकनीकि कंपनी ने विकसित किया है। उससे भी अधिक दिलचस्प तथ्य ये है कि 403 वर्ग मीटर का ये सब्ज़ी का खेत एक ग्रीन हाउस खेत है जहाँ पौधे एक पतली सी फिल्म पर उगाए जाते हैं, जिसे एक भी किसान की कतई ज़रुरत नहीं होती और जो पूरी तरह जापान स्थित फुजित्सु कंपनी के कार्यालय से नियंत्रित किया जाता है।[73] यह शायद स्मार्ट खेती की पराकाष्ठा है। लेकिन इसमें किसानों का क्या होगा? कितनी बड़ी विडम्बना है कि जिन्होंने जलवायु परिवर्तन को एक गंभीर समस्या बनाया, वे ही इसके समाधान बना रहे हैं और जिनके पास टिकाऊ खेती का ज्ञान है उनकी आवाजों को अनसुना किया जा रहा है।

4.2 छोटे किसानों पर असर

जलवायु हितैषी खेती के तहत प्रोत्साहित की जा रही पद्धतियों में खेती के ऐसे तरीके शामिल हैं जिनमें बहुत ज्यादा निवेश होता है, जो रसायनों, उरर्वकों, कीटनाशकों, संकर बीजों और पानी के बहुत अधिक इस्तेमाल पर निर्भर करते हैं। इनमें अनेक दफा लंबे परिवहन की लागत भी शामिल होती है। जैसे पहले की हरित क्रान्ति में हुआ था वैसे ही यह जलवायु हितैषी खेती भी छोटे किसानों को कम लागत और अधिक पैदावार का वादा करती है। साथ ही इसमें एक नया वादा यह जुड़ गया है कि इस प्रकार की खेती से जलवायु को कोई नुकसान नहीं पहुँचता है और इस पर जलवायु परिवर्तन का अधिक असर भी नहीं होता। यद्यपि, यह स्पष्ट है कि खेती के इस तरह के मॉडल को अपनाने से विकासशील देशों की खेती भी बहुत जल्द पश्चिमी देशों की औद्योगिक खेती जैसी हो जाएगी जो मुट्ठीभर लोगों के हाथ में सिमटी होती है और जिसमें एक ही तरह की फसल (Monocropping) बहुतायत में होती है, जिसमें आनुवांशिक रूप से बदलाव किए गए बीजों का इस्तेमाल और उच्च तकनीकि निवेश जरूरी होता है। खेती का ऐसा मॉडल बड़े पैमाने पर की जाने वाली खेती के लिए भले उपयुक्त भी हो लेकिन पर्यावरण के लिए ये कतई उपयुक्त नहीं होता। ये भी स्पष्ट है कि ऐसी पद्धतियाँ खेती के व्यवसाय की बड़ी कम्पनियों को ही फ़ायदा पहुँचाएँगी जिनके मुनाफे ऐसे उर्वरकों और संकर बीजों की बिक्री पर निर्भर करते हैं।

---

[73] *http://www.fujitsu.com/global/about/resources/news/press-releases/2015/1208-01.html*

छोटी जोत के किसानों को ये पद्धतियाँ अधिक कमजोर और निर्भर बनाएँगी। उनकी निर्भरता बड़ी कम्पनियों के लिए उनके उत्पादों पर होगी। बड़ी कम्पनियों का संकर बीजों के बाज़ार पर कब्जा रहता है और ये बाजार बहुत अस्थिर होता है क्योंकि हर नए संकर बीज के साथ पहले के बीज से होने वाली फसल कम फ़ायदेमंद हो जाती है। रसायनों, उर्वरकों और ऐसे बीजों के लम्बे समय तक इस्तेमाल से जैव विविधता, जमीन, मिट्टी और अन्य संसाधनों पर बुरा असर पड़ता है जिसका खामियाजा भी छोटे किसानों को ही उठाना पड़ता है।

इस पर भी कार्बन उर्त्सजन को नियंत्रित करने के नाम पर जलवायु हितैषी खेती के तहत अपनाई जा रही पद्धतियाँ कार्बन को ज़मीन में ही ज़ब्त किए रखने को बढ़ावा दे रही हैं। इससे खेत और जंगल कार्बन के हौज में बदलते जा रहे हैं। इससे कृषि व्यवसाय करने वाली कम्पनियों द्वारा ज़मीन को कब्जाये जाने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिल सकता है। ऐसा पहले भी और जगहों पर हो चुका है।[74] अस्थिर कार्बन बाज़ार में होने वाली हलचलों के भी सबसे बुरे शिकार छोटे किसान ही हुए।

यदि जलवायु हितैषी खेती के तौर-तरीके अपनाकर अमल में ले आए जाते हैं तो भारत की खेती को उद्योग बनने में और छोटे किसानों द्वारा खेती को पूरी तरह छोड़ देने में ज्यादा बरस नहीं लगेंगे। इससे देश की खाद्य आपूर्ति कुछ ही हाथों में सिमट कर रह जाएगी। छोटे किसानों की इससे दोतरफा तबाही होगी। एक तो उनसे उनकी आजीविका का साधन छिन जाएगा और दूसरी तरफ उनकी खाद्य सुरक्षा भी खतरे में पड़ जाएगी।

4.3 खाद्य सुरक्षा पर असर

जलवायु हितैषी खेती का एक प्रमुख उद्देश्य कृषि उत्पादकता को लगातार बढ़ाते जाना है। बढ़ती जाती आबादी को खाद्य सुरक्षा देना एक बड़ा मुद्दा है। लेकिन ये दावा अपने आप में दोषपूर्ण है कि उत्पादकता बढ़ाने से दुनिया की भूख को मिटाया जा सकता है। नोवार्टिस (दुनिया की सबसे बड़ी जैव कम्पनियों में से एक) के निदेशक ने एक बार कहा था, ''दुनिया की भूख मिटाने के लिए उत्पादन और वितरण की नहीं राजनीतिक और वित्तीय इच्छा शक्ति की जरूरत होती है।''[75] यह इस तथ्य से भी ज़ाहिर होता है की भारत कृषि उत्पादों के सबसे बड़े उत्पादकों और निर्यातकों में से एक है। इसके बाद भी यहाँ की बड़ी आबादी भूख से त्रस्त है। विश्व के भूख सूचकांक 2016 के मुताबिक भारत 118 विकासशील देशों में से ९७वें क्रम पर आता है।

भारत में खेती के क्षेत्र में बड़ी आबादी छोटी जोत के ऐसे किसानों की है जिनके पास अपनी आजीविका के साथ-साथ खाने की जरूरत के लिए भी खेती ही एकमात्र जरिया है। जलवायु हितैषी खेती के नाम पर जिस तरह की पद्धतियों को प्रोत्साहित किया जा रहा है उससे खाद्य असुरक्षा बढ़ेगी ही बढ़ेगी। इसके अनेक कारण हैं। पहला तो यह कि जिस पश्चिमी मॉडल पर आधारित औद्योगिक खेती की पद्धतियों को जलवायु हितैषी खेती के नाम पर बढ़ावा दिया जा रहा है, वे बहुत उर्वरक और ऊर्जा की माँग करती हैं जो काफ़ी महँगी होती है। ज़ाहिर है छोटे किसान इसे अपना नहीं पाएँगे। न ही वे इस तरह की खेती के लिए ज़रूरी तकनीकि और उस तकनीकि के लिए ज़रूरी क़ीमत चुका सकेंगे। दूसरा कारण यह है कि जैव ईंधन की माँग बढ़ने से दुनिया में ज़मीन का बहुत सारा हिस्सा खाद्य उत्पादन के उपयोग से बाहर निकलकर ईंधन उत्पादन के उपयोग में स्थानांतरित हो गया है। इससे भी खाद्य असुरक्षा बढ़ेगी। तीसरी आशंका यह है कि अगर कार्बन को खेती की ज़मीन में जमा करके रखने को 'स्वच्छ

---

[74] *In India with Jatropha cases and in Malaysia with palm plantations.*

[75] *Food for All, the need for a new agriculture. John Madeley.*

विकास प्रबंधन' (Clean Development Mechanism) मान लिया जाता है तो बड़े कृषि व्यवसायियों और अन्य निजी कंपनियों द्वारा की जाने वाली ज़मीन की लूट पूरे देश में कई गुना बढ़ जाएगी। फिर छोटे किसान अपनी ज़मीन भला कैसे बचा पाएँगे!

4.4 प्राकृतिक संसाधनों पर असर

हालाँकि परिभाषा के अनुसार जलवायु हितैषी खेती में ऐसी पद्धतियाँ शामिल की जानी चाहिए जो खेती और पारिस्थितिकी के अनुकूल है लेकिन कामयाबी की जो कहानियाँ उन्होंने सामने लाई हैं उनसे ज़ाहिर होता है कि उनकी दिलचस्पी कृषि पारिस्थितिकी में हरगिज़ नहीं है। औद्योगिक खेती के मॉडल टिकाऊ नहीं हैं, ऐसा संदेह व्यक्त करने वाले अनगिनत अध्ययन मौजूद हैं। जलवायु हितैषी खेती के प्राकृतिक संसाधनों पर कुछ असर इस तरह के हो सकते हैं:

- उर्वरकों के बेतहाशा इस्तेमाल से जमीन की उर्वरता खत्म हो सकती है,
- इसी तरह औद्योगिक खेती का मॉडल पानी का उपभोग बहुत ज्यादा करता है। इससे निकट भविष्य में जल संकट आ सकता है।
- जलवायु हितैषी खेती के अंतर्गत अपनाई जाने वाली तकनीकी और पद्धतियाँ मोनोक्रॉपिंग मतलब एक फसलीय खेती के अनुकूल हैं। इसलिए इससे जैव विविधता को भी नुकसान पहुँचेगा।
- कार्बन को जमीन के अंदर जमा करके रखने के प्रावधान से जमीन और जंगल जैसे प्राकृतिक संसाधन कमोडिटी यानी खरीदे-बेचे जाने वाले माल में बदल जाएंगे।

4.5 जलवायु परिवर्तन पर असर

जलवायु परिवर्तन पर इसके असर जाँचने के लिए सबसे पहला कदम यह होगा कि हम औद्योगिक खेती के असर जलवायु परिवर्तन पर और खेती पर ठीक से जान लें। ऐसा करने के बजाए इस उद्योग के प्रमुख नेतृत्वकारी लोग विकासशील देशों में जलवायु हितैषी खेती की तरफ बढ़ रहे हैं। ऐसा वे अपने फायदे और मुनाफे को बढ़ाने के लिए और यथास्थितिवाद को कायम रखने के लिए कर रहे है।

4.6 ग्रीन हाउस गैसों के सम्बन्ध में

अव्वल तो जलवायु हितैषी खेती के भीतर ऐसे कोई नियम शामिल नहीं है जो ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन पर लगाम लगाने का प्रावधान करते हों। इसलिए कंपनियाँ ग्रीन हाउस गैसों को कम करने या खत्म करने पर बाध्य नहीं हैं। दूसरी बात ये कि जलवायु हितैषी खेती की पद्धतियाँ कार्बन को ज़मीन में ही रखने के तरीके को सबसे ज़्यादा प्रमुखता देती हैं। खेती में सक्रिय बड़ी कंपनियाँ बिना जुताई की खेती या बायोचार जैसी खेती की पद्धतियों को बढ़ावा देने के लिए लॉबिंग कर रही हैं ताकि वे स्वच्छ विकास प्रबंधन (clean development management) के तहत मानी जा सकें। यह वही पद्धतियाँ हैं जो जलवायु हितैषी खेती में भी कार्बन या ग्रीन हाउस गैसों का शमन करने के लिए प्रोत्साहित की जाती हैं। यह जाहिर है कि ऐसे तरीके कार्बन या ग्रीन हाउस गैसों के रोकने के उद्देश्य के लिए नहीं बल्कि स्वच्छ विकास प्रबंधन से उद्योगों में अपना मुनाफा कमाने के लिए है। इसका सीधा असर यह होगा कि कंपनियाँ कार्बन क्रेडिट खरीदेंगी और प्रदूषण फैलाना जारी रखेंगी।

4.7 अनुकूलन पर इसका असर

जलवायु हितैषी खेती में जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन के तरीकों में बड़े पैमाने पर संकर बीजों के उपयोग की वकालत की जा रही है। कहा जाता है कि यह संकर बीज सूखे से निपट सकते हैं, इनमें कीड़े नहीं लगते वगैरह-वगैरह। सीआरआईएपीआर जैसी और भी तकनीकें ऐसे बीजों का उत्पादन करने के लिए विकसित की जा रही हैं। ''जलवायु हितैषी'' या ''जलवायु के लिए तैयार'' का दावा किए जा रहे बहुत सारे बीजों को आनुवांशिक रूप से बदला जा रहा है। वर्ष 2008 से 2010 के बीच में ''जलवायु के लिए तैयार'' फसलों से सम्बंधित 261 पेटेंट दाखिल किए गए जिनमें से करीब 80 प्रतिशत खेती में व्यवसाय करने वाली छः विशालकाय कम्पनियों के नियंत्रण में हैं।[76] यह और कुछ नहीं खेती का औद्योगिकीकरण और एकाधिकार पाना है। किसानों को ऐसे प्रयोगशालाओं में विकसित किए हुए बीजों की जरूरत नहीं जिनका पेटेंट किया जा चुका है, जो महँगे हैं, जिन्हें उर्वरकों की बहुत जरूरत होती हैं और जो केवल एक बार ही इस्तेमाल के लायक हैं और जिनके दूरगामी प्रभाव भी पता नहीं। ऐसी अनुकूलन की पद्धतियाँ किसानों के लिए एक खतरनाक दुष्चक्र बना सकती हैं। जिसमें एक तरफ ऐसे बीजों के उपयोग से जलवायु परिवर्तन पर बुरा असर पड़ता हो और फिर वही कम्पनियाँ ऐसे और बीज विकसित करती हैं जो खराब हो चुकी जलवायु के अनुकूल हों। आखिर कब तक किसान ऐसे बीजों पर निर्भर रह सकते हैं? इसलिए इन उद्योगों के पास जलवायु परिवर्तन की समस्या का कोई हल नहीं है बल्कि वो इस समस्या से भी मुनाफ़ा कमाना चाहती हैं।

किसानों को असली समाधान चाहिए जो जलवायु समस्या के मुताबिक खेती को ढाल सके, जो उन पर या पर्यावरण पर भारी न पड़े, ऐसे प्रतिगामी उपाय नहीं जिनकी कीमत उन्हें जल्द या देर से चुकानी पड़े।

[76] *https://griid.org/2012/11/06/seizing-the-climate-crisis-to-demand-a-truly-populist-agenda/*

5. विकल्प : कृषि परिस्थितिकी

खेती और जलवायु परिवर्तन की समस्याओं को सही मायने में हल करने के तरीके के तौर पर कृषि पारिस्थितिकी को अनेक नागरिक संगठनों और किसान संगठनों ने मान्यता दी है। इनमें ला विया केम्पेसिना भी शामिल है। हरित क्रांति से सीखे गए अनेक सबकों में एक यह भी है कि प्रयोगशालाओं से सीधे ज़मीन पर लाए जाने वाले उपाय हमेशा अच्छे और सही परिणाम ही नहीं देते क्योंकि यह किसान के ज्ञान को नज़रअंदाज़ करते हैं और यह इस बात का ध्यान नहीं रखते कि पौधों को अनुकूलन में कितना वक़्त लगता है। यह प्राकृतिक प्रक्रियाओं पर होने वाले दूरगामी प्रभावों की भी उपेक्षा करते हैं। जलवायु हितैषी खेती के विचार से अलग कृषि पारिस्थितिकी किसानों के साथ-साथ पर्यावरण की जरूरतों को भी ध्यान में रखती है। यह दुःखद है कि कृषि पारिस्थितिकी खेती में व्यवसाय करने वाली विशाल कम्पनियों की मार्केटिंग और लॉबिंग से मुकाबला कर पाने में अभी तक कामयाब नहीं रही। जलवायु हितैषी गाँवों और जलवायु हितैषी खेती की पद्धतियों के फैलाव से कृषि पारिस्थितिकी के तहत उपयोग की जाने वाली पद्धतियाँ खतरे में पड़ने की आशंकाएँ बलवती होती लगती हैं।

निष्कर्ष

पैदावार बढ़ने और समृद्धि आने के वादे करना आसान है, तब और भी ज़्यादा आसान है जब इन वादों के पीछे वैज्ञानिकों और शोधकर्ताओं के दावे भी हों। अकसर उनका दावा यह होता है कि वे उन किसानों की बेहतरी के बारे में ख़ुद किसानों से ज़्यादा अच्छी तरह जानते हैं जिनकी ज़िंदगी खेतों में गुजरी है। जब चीज़ें अपेक्षित तरह से घटित नहीं होती हैं, जैसा कि हरित क्रांति के दौरान हुआ था, तो वे एक दस्तावेज तैयार करते हैं जिसमें ''गैर इरादतन घटनाक्रम'' की सूची होती है। किसान अपनी ख़राब हो चुकी ज़मीन, बेकार हो चुकी फसल और कर्ज के पहाड़ के साथ वहीं छूट जाते हैं।

जलवायु हितैषी खेती और कुछ नहीं हरित क्रांति का ही नया अवतार है। इसे भी वही संगठन प्रोत्साहित कर रहे हैं जिन्होंने हरित क्रांति का बढ़-चढ़ कर समर्थन किया था। इस बार वे नई तकनीकों, जैव तकनीक, सीआरआईएसपीआर, नए संकर बीजों और बेहतर बहानों के साथ अपना माल और अपनी सेवाएँ बेचने आए हैं। इन बेहतर बहानों में एक जलवायु परिवर्तन के असरों को नियंत्रित करने का बहाना भी शामिल है। इस बार इस खेल में नए खिलाड़ी शामिल हैं। ज्यादा बड़ी कृषि व्यवसाय की कम्पनियाँ, कार्बन बाज़ार से मुनाफ़ा कमाने की कोशिश में लगी निजी कम्पनियाँ, विकसित देशों की सरकारें जो अपने कार्बन सौदे पूरे करने के लिए कार्बन उत्सर्जन में कमी के प्रमाणपत्र चाहती हैं और विकासशील देशों की सरकारें जो पैसा चाहती हैं। इस बार दाँव पर बहुत कुछ है ये खिलाड़ी किसी के लिए जवाबदेह नहीं हैं। जलवायु हितैषी खेती की पद्धतियों के असर लाखों-करोड़ों किसानों की आजीविका पर असर डालेंगे। फिर भी इतना गैर जवाबदेह रवैया आश्चर्यजनक है। हालाँकि ये कम्पनियाँ जलवायु हितैषी खेती के फायदों के बारे में एकतरफा प्रचार करती हैं लेकिन उनमें से अधिकाँश अपने किए गए वादों पर खरी नहीं उतरीं हैं।

अगर जलवायु हितैषी खेती का एजेंडा कामयाब हो जाता है तो उसका नतीजा ज़मीन और जंगल के निजीकरण तथा कॉरपोरेटीकरण में निकलेगा। इसका मतलब छोटे किसानों का खेती से बाहर हो जाना होगा। उनकी आजीविका और खाद्य सुरक्षा जलवायु हितैषी खेती की बलि चढ़ जाएँगे। धीरे-धीरे खेती एक उद्योग बनने की ओर बढ़ने लगेगी, आनुवांशिक बदलाव वाली फसलों का इस्तेमाल भी अधिक होने लगेगा और जलवायु परिवर्तन के लिए सबसे उपयुक्त समाधान रखने वाली

पारंपरिक खेती पर पूर्ण विराम लग जाएगा जो भारत जैसे विकासशील देशों में अभी तक थोड़ी-बहुत बची हुई है। जलवायु हितैषी खेती की किसी भी पद्धति पर कोई स्पष्ट टीप नहीं है। इसे कोई प्रशंसा की बात नहीं माना जाना चाहिए क्योंकि इस खुले दिखते नजरिए के पीछे दरअसल ऐसी सब पद्धतियों को शामिल करने को आसान बनाना है जो पर्यावरण या किसानों को भले उजाड़ दें लेकिन कम्पनियों का मुनाफ़ा बढ़ाना जारी रखें। इसे ही जलवायु हितैषी कहा जाएगा। जलवायु हितैषी खेती को दरअसल न जलवायु की चिंता है न खेती की। यह खेती को पहले से ही कमज़ोर कार्बन बाज़ार में, पहले से ही संदेहास्पद कार्बन कम करने की योजनाओं में शामिल करना चाहती है ताकि खेती के बाज़ार को विकासशील देशों में भी कब्जाया जा सके। विकसित देशों में पहले ही उनका इस क्षेत्र पर प्रभुत्व कायम है। मुनाफ़ा बढ़ाने के लिए उन्हें अब नए इलाकों की तलाश है।

अगर हम वाकई में खेती को जलवायु के माफ़िक और बुद्धिमान बनाना चाहते हैं तो कृषि पारिस्थितिकी ही इसका सही समाधान है। इस रास्ते पर चलकर पर्यावरण, प्राकृतिक संसाधन और किसान, सभी समृद्ध होंगे।

संलग्नक-2

विचार-विमर्श का सार-संक्षेप

नई दिल्ली में 12 और 13 अक्टूबर, 2017 को इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में 'वित्तीयकरण और जलवायु संकट के झूठे समाधानः खेती के लिए सही विकल्प क्या हो - कृषि पारिस्थितिकी या जलवायु हितैषी कही जाने वाली खेती?' विषय पर दो दिन विचार-विमर्श हुआ।

फ़ोकस ऑन दि ग्लोबल साउथ तथा रोज़ा लक्ज़मबर्ग स्टिफटुंग (साउथ एशिया) द्वारा आयोजित इस गोलमेज विचार गोष्ठी में में देश के विभिन्न हिस्सों से नागरिक संगठनों, गैर सरकारी संगठनों, विभिन्न किसान संगठनों के प्रतिनिधि, अकादमिक विद्वान और वैज्ञानिक शामिल हुए। यह जर्मनी के बॉन शहर में होने वाले संयुक्त राष्ट्र संघ के जलवायु परिवर्तन पर हुए फ्रेमवर्क सम्मेलन (UNFCCC) कॉप23 की तारीख़ों से ठीक पहले आयोजित किया गया था। इससे यह अच्छा हुआ कि जलवायु परिवर्तन और उससे संबंधित नीतियों और प्रस्तावित समाधानों के बारे में यह सभी समूह अधिक बेहतर विश्लेषण कर सके, अपनी समझ साझा कर सके और बॉन में उनके विचारों को प्रतिनिधित्व दिया जा सका।

दो दिन के इस लंबे विचार-विमर्श की शुरुआत अतीत के तथा अभी जारी जलवायु समझौतों के और विभिन्न देशों की नीतियों के विश्लेषण से हुई। इससे जलवायु संकट के पीछे मौजूद व्यवस्थागत तथा राजनीतिक कारणों की एक समीक्षा की जा सकी तथा उन तथाकथित समाधानों के झूठ को उजागर किया जा सका जिन्हें जलवायु संकट का समाधान कहा जा रहा है और जो दरअसल मोटे तौर पर वैश्विक पूँजी के हितों की रक्षा के उद्देश्य के लिए बनाये जा रहे हैं।

इस वैचारिक कवायद में विभिन्न क्षेत्रों में मौजूद ऐसे अनेक विकल्पों और समाधानों पर भी विशेष बातचीत हुई जो लोगों ने अपने नेतृत्व में जनता को केन्द्र में रखकर खड़े किये हैं। आयोजकों के मुताबिक इस दो दिन के मंथन के पीछे मूल विचार तो छोटे किसानों की खेती पर जलवायु परिवर्तन के असरों को समझना, और खेती में संकट के समाधान के तौर पर सुझायी जा रही जलवायु हितैषी खेती के झूठ का पर्दाफाश करना था, लेकिन बातचीत कुछ यूँ आगे बढ़ी कि इन दोनों बिंदुओं पर पर्याप्त

बातचीत के बाद उसमें इन सभी मुद्दों से राजनीतिक संदर्भ भी जुड़ते गए और एक व्यापक दृश्य स्पष्ट होने लगा। शुरुआती सत्र में पेरिस समझौते और उसके पीछे के राजनीतिक-सामाजिक संदर्भ और कारणों पर बात हुई, औद्योगिक देशों ने क्या भूमिका अदा की और समझौते के गैर प्रतिबद्ध और गैर बाध्यकारी रूप को लेकर भी चर्चा हुई। चर्चा से समझौते के विरोधाभासी पहलू भी सामने आये। यह भी स्पष्ट हुआ कि पेरिस समझौते में उत्सर्जन घटाने या पृथ्वी के तापमान को 1.5 डिग्री से ज़्यादा बढ़ने से रोकने की क्षमता ही नहीं है। पेरिस समझौते में 1.5 डिग्री को दहलीज माना गया है। दरअसल पेरिस समझौते को भीतरी तौर पर अक्षम ही बनाया गया है। उद्घाटन सत्र के वक्ताओं ने चिंता के साथ यह कहा कि जलवायु के मसलों और चर्चाओं को भी उसी तर्ज पर लाया जा रहा है जैसे विश्व व्यापार संगठन व अन्य बहुपक्षीय समझौतों के साथ किया गया है। यह प्रक्रिया वस्तुतः उत्तरी दुनिया (ग्लोबल नॉर्थ) के देशों और उसके धनिकों द्वारा वैश्विक पूँजी और अपने व्यापारिक हितों की रक्षा की खातिर की जा रही है।

पहले सत्र के वक्ताओं ने पेरिस समझौते के भीतर शामिल कमज़ोरियों पर भी रोशनी डाली। उन्होंने कहा कि इस समझौते को लक्ष्य निर्धारण करने की क्षमता नहीं हासिल है, यह अपनी ऐतिहासिक ज़िम्मेदारी से मुँह फेरता है, तकनीकि और वित्तीय हस्तांतरण के बारे में भी समझौते में स्पष्टता नहीं है। उन्होंने भारत की ओर से बॉन में चर्चा हेतु जा रहे प्रतिनिधियों को चेताया कि ग्लोबल नॉर्थ और औद्योगिकीकृत देशों के समूह यह कोशिश करते हैं कि पर्यावरण के मुद्दों पर विकासशील और अति विकासशील देश आपस में बँट जाएँ।

भारत की ओर से जो सहयोग निश्चित किया गया है, उसकी भी पहले ही सत्र में समीक्षा हुई। वक्ताओं ने जहाँ भारत के पुनर्नवीनीकरण योग्य ऊर्जा पर ज़ोर देने की सराहना की वहीं उन्होंने विस्तारवादी ग्रीनफील्ड मॉडल पर सवाल उठाया जिसमें काफ़ी ज़मीन चाहिए होगी। इसके बजाय उनके मुताबिक एक विकेन्द्रीकृत और स्थानीय नेतृत्व वाला विस्तार अधिक उपयुक्त होगा। वक्ताओं ने बताया कि इस मॉडल में जंगल काटने के लक्ष्य के नाम पर उठाये जा रहे खोखले कदमों ने कुदरत को भी बेचने की कोशिश की है और ये गाँवों को क़ब्ज़ाने और जंगल की आम उपयोग की ज़मीन को हड़पने का अच्छा बहाना बन गया है।

दूसरे सत्र का शीर्षक था, 'जलवायु हितैषी खेती (सीएसए) का खंड-खंड विखंडन'। इस सत्र में वक्ताओं ने जलवायु हितैषी खेती के मायनों, दायरों और उसके लागू होने पर संभावित असरों के बारे में बात की। उन्होंने बताया कि किस तरह सीएसए, जलवायु हितैषी पैकेज के नाम पर खेती के मौजूदा औद्योगिक मॉडल को ही आगे बढ़ाने का एक औजार बन रहा है। श्रीलंका, नेपाल और बांग्लादेश जैसे दक्षिण एशियाई देशों से आये वक्ताओं ने भी अपने देशों में सीएसए के तहत अपनाई जा रहीं प्रक्रियाओं के बारे में जानकारियाँ साझा कीं।

जो प्रस्तुतियाँ की गईं, उनमें कृषि पारिस्थितिकी जैसे ठोस विकल्पों की भी प्रस्तुति थी जिसमें बाजरा की खेती में लोगों की आपसी प्रक्रिया से विकसित हुआ जलवायु के लिए सच में अनुकूल खेती के तरीके और तकनीकि का उदाहरण भी प्रस्तुत किया गया। दूसरे सत्र में इस बात पर विचार हुआ कि जलवायु संकट के संदर्भ में फसल बीमा योजना कितनी प्रभावशाली है। इसी सिलसिले में भारत में सार्वजनिक और निजी भागीदारी वाली उस योजना का भी आंकलन किया गया जिसके अंतर्गत सन 2025 तक 10 लाख किसान लाभान्वित होंगे। इस योजना में हालाँकि भारत में परंपरागत बीमा योजनाओं की तुलना में अनेक अच्छी बातें हैं लेकिन राज्य स्तर पर अनेक दिक्कतें भी हैं। अधिसूचना जारी करने में देरी, दस्तावेजीकरण का किसानों के पास न होना, किसानों से कोई मशविरा नहीं करना, कोई पारदर्शिता नहीं आदि इसी तरह की कुछ समस्याएँ हैं। इस बारे में जो

अध्ययन हुए हैं वे बताते हैं कि विदर्भ या मराठवाड़ा जैसे जलवायु पीड़ित इलाकों में इस योजना की कामयाबी काफी संदेहास्पद है।

दक्षिण एशिया के देशों में जलवायु के अनुकूलन की नीतियों पर बात करते हुए यह बिंदु भी सामने आया कि बांग्लादेश जो जलवायु के मामले में काफ़ी शिकार और पीड़ित देश है, उसने हरित क्रांति और जलवायु हितैषी खेती (सीएसए) के रास्ते को चुना है। नेपाल ने अपने संविधान में खाद्य संप्रभुता को अपने राष्ट्रीय संविधान में शामिल किया है जिससे जो किसान अपनी ज़मीन पर खेती ख़ुद करते हैं, मतलब जो छोटे किसान हैं, उनकी ज़मीन, पानी, जंगल और पैदावार के अन्य साधनों तक पहुँच सुनिश्चित रहेगी। चर्चा में कृषि पारिस्थितिकी जैसे जन केन्द्रित विकल्पों को सीएसए की तुलना में बढ़ावा देने की बात को खेती और जलवायु के लिए मुख्य सकारात्मक कदम के तौर पर स्वीकार किया गया। श्रीलंका भी लगता है जलवायु संकट के समाधान के तौर पर सीएसए जैसी क्लाइमेट स्मार्ट खेती करने के तरीकों को अपनाने का सोच रहा है।

दूसरे दिन के सत्र की शुरुआत ऊर्जा, अधोसंरचना (इंफ्रास्ट्रक्चर), खेती और परिवहन (ट्रांसपोर्ट) क्षेत्र में आये ढेर सारे तकनीकि समाधानों के आंकलन पर लंबी चर्चा हुई। वक्ताओं ने विस्तार से इन समाधानों पर बात की कि इनको किस पैमाने पर किया जाए, ये कितने खर्चीले या सस्ते होने पर वहन किये जा सकते हैं, और कितने व्यावहारिक हैं, आदि। यह पाया गया कि अगर सब के सब न भी माने जाएँ तो भी सीएसए के तहत सोचे गए अधिकांश समाधान खर्च, व्यवहारिकता, विस्तार आदि पैमानों पर नाकाम हैं और अपरिपक्व सोच का नतीजा हैं।

स्वच्छ विकास तंत्र और जंगलों के कटने और जंगल क्षरण से होने वाले उत्सर्जन को कम करने के नाम पर भारत के उत्तर-पूर्वी राज्यों में गाँवों की सार्वजनिक और साझा ज़मीन और जंगल हड़पे जा रहे हैं, इसका भी विशेष उल्लेख किया गया।

भारत के अनेक शहरों में कचरे से ऊर्जा बनाने की परियोजनाएँ लागू की जा रही हैं। संगोष्ठी में इन योजनाओं की एक विस्तृत समीक्षा प्रस्तुत की गई। इस सन्दर्भ में बेंगलुरु के प्रयासों की प्रशंसा की गई जहाँ कचरे के प्रबंधन का विकेंद्रीकृत प्रयास किया गया है और इसके लिए स्थानीय प्रशासन और निरीक्षण के तंत्र को सुधारा गया है।

इन प्रस्तुतियों के दौरान इथेनॉल और रतनजोत से बनने वाले जैव ईंधन को बढ़ावा देने के प्रयासों की भी समीक्षा हुई। ऐसी परियोजनाओं में ज़्यादा ज़मीन की ज़रूरत पड़ती है और अंततः गाँवों की सार्वजनिक व साझा उपयोग की ज़मीनें अधिग्रहीत कर ली जाती हैं जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था बुरी तरह तहस-नहस हो जाती है। इस सत्र में यह भी रेखांकित किया गया कि जलवायु अनुकूलन के नाम पर किस तरह कॉरपोरेट्स अनुवांशिक रूप से संवर्धित बीजों तथा अन्य जीवों (GMO) को लोगों और उनकी खेती के ऊपर थोप रहे हैं।

अंतिम सत्र जलवायु परिवर्तन के प्रति जन विकल्प क्या हो, इस पर विचार विमर्श का था। इसमें खेती में कृषि पारिस्थितिकी और ऊर्जा के क्षेत्र में विकेंद्रीकृत पुनर्नवीनीकरण जैसे ठोस उदाहरण प्रस्तुत किए गए। इसी सत्र में अपने परंपरागत जीवन के साथ जलवायु परिवर्तन के असर से मुक़ाबला कर सकने में सक्षम स्थानीय समुदायों के पट्टे के अधिकारों पर भी बात हुई। न्येलेनी घोषणापत्र[77] इस सत्र में ज़ोरदार तरह से प्रतिध्वनित हुआ जिसमें कहा गया है, ''सही समाधान औद्योगिक मॉडल से चिपके रहकर नहीं, बल्कि इसे पूरी तरह बदल कर अपना स्थानीय खाद्य तंत्र निर्मित करने से मिलेगा।''

[77] न्येलेनी घोषणापत्र सामाजिक आंदोलनों और खाद्य संप्रभुता व कृषि पारिस्थितिकी के लिए अभियानरत प्रमुख नागरिक संगठनों ने तैयार किया था जिनका मानना था कि दुनिया को बदलने के लिए ये मुद्दे बेहद महत्त्व के हैं। *https://nyeleni.org/spip.php?page=forum&lang=en*

इस सत्र के वक्ता ने पारिस्थितिकी के अंदर लचीलेपन या नम्यता के विचार को तथा कृषि पारिस्थितिकी के जटिल खाद्य संजाल को विस्तार से अनेक स्तरों पर और अनेक तरह से बातचीत से समझाया। उन्होंने कहा कि इस जटिलता से ही नम्यता या लचीलापन निर्मित होता है। जबकि सीधी-सादी दिखने वाली हरित क्रांति पर आधारित खेती कुछ प्रजातियों को निश्चित रूप से खत्म कर देती है और पूरे तंत्र को अस्थिर बना देती है। वक्ता ने स्पष्ट तौर पर कहा ''कृषि पारिस्थितिकी ही दरअसल हितैषी यानी स्मार्ट खेती है।''

भारत की विभिन्नताओं पर, देशज खेती के तरीकों में मौजूद लचीलेपन पर भी प्रस्तुतियाँ हुईं। इन प्रस्तुतियों में बताया गया कि कैसे देशज खेती के तौर-तरीकों ने देशज लोगों के लिए संपूर्ण खाद्य सुरक्षा को कायम रखा। इसी सत्र में उन सामाजिक संगठनों के कार्यों पर भी प्रस्तुतियाँ दी गईं जो स्थानीय समुदायों को कृषि पारिस्थितिकी का प्रशिक्षण देकर देशज समुदायों को सहयोग दे रहे हैं।

बाकी चर्चाओं में खाद्य तंत्र के भीतर बायोमास के क्रांतिक महत्त्व पर भी बात हुई और इन चुनौतियों की पहचान की गई कि कैसे जैव विविधता को कायम करना है और कैसे खाने योग्य पौधे जिनका इस्तेमाल कम हो गया है या खाई जा सकने वाली जंगली चीज़ें वापस हमारी खाद्य श्रृंखला और खाद्य तंत्र का हिस्सा बनें। यहाँ तक कि जिन्हें खरपतवार कहा जाता है उनमें भी अनेक औषधीय और पोषक महत्त्व की चीज़ें होती हैं। अनेक सामाजिक संगठनों द्वारा पुनर्नवीनीकरण योग्य ऊर्जा के कार्यक्रमों से ग्रामीण क्षेत्रों में किए जा रहे विद्युतीकरण के प्रयासों का भी ज़िक्र हुआ।

जो प्रस्तुतियाँ हुई उनमें यह बात आमतौर पर रेखांकित की गई कि एक व्यापक कदम उठाए जाने की ज़रूरत है ताकि भारत में ऊर्जा की समस्या से निपटा जा सके और जो समाधान खोजा जाए वह स्थानीय आर्थिक तंत्र के मुताबिक हो। यह भी रेखांकित किया गया कि ऊर्जा के 4 प्रमुख जरिये हैं - सौर ऊर्जा, नाभिकीय ऊर्जा, गुरुत्वाकर्षण ऊर्जा एवं भूतापीय ऊर्जा। इनमें से अभी भी भारत को अंतिम दो विकल्पों से ऊर्जा का दोहन करना शेष है।

स्थानीय समुदायों के नज़रिए से भी कुछ प्रस्तुतियाँ हुई जिन्होंने सामाजिक और राजनीतिक समाधानों की आवश्यकता पर भी जोर दिया खासतौर से स्थानीय समुदाय के भौगोलिक सीमाओं और प्रशासनिक अधिकारों तथा बाहरी ख़तरों से सुरक्षा को लेकर चिंता व्यक्त की गई। भारत में एक प्रगतिशील वन अधिकार कानून मौजूद है जो जंगलों में रहने वाले लोगों को, आदिवासियों को कानूनी तौर से उनके अपने क्षेत्र, जहाँ वह रहते हैं, पर अधिकार के लिए अधिकृत करता है। इस कानून के तहत भारत के आधे जंगल आते हैं लेकिन सरकार इस कानून को लगातार कमजोर बना रही है और कानून का उल्लंघन कर रही है जिसे चुनौती दी जाना जरूरी है।

भारत में जलवायु इंसाफ के आंदोलन (Climate Justice Movement) का एक संक्षिप्त ऐतिहासिक परिदृश्य प्रस्तुत किया गया और उसकी समीक्षा भी की गई। ऐसे आंदोलनों के विभिन्न हिस्सों पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए वक्ताओं ने यह भी रेखांकित किया कि भारत में जो आंदोलन या संघर्ष जलवायु परिवर्तन के मुद्दे से जुड़े हैं, वे सभी संघर्ष ऊर्जा के साथ जुड़े हैं, जैसे नाभिकीय संयंत्र या विद्युत संयंत्र। जबकि लोगों की इन संघर्षों में जुड़ने के पीछे जो ताकत या जो वजह रही है वह उनकी आजीविका रही है उनके संसाधनों पर से उनके नियंत्रण का छीना जाना है, न कि जलवायु परिवर्तन का मुद्दा। यह मुद्दे आपस में जुड़े हुए हैं। इन मुद्दों को लेकर सक्रिय संगठनों - समूहों - आंदोलनों के बीच एक तारतम्य बनाया जाना जरूरी है। इसकी जरूरत को भी संगोष्ठी में महसूस किया गया। साथ ही इस बात पर भी चिंता व्यक्त की गई कि जलवायु के इंसाफ के अधिकारों की लड़ाई का एनजीओकरण लगातार बढ़ता जा रहा है।

NOTES

फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ

फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ, एशिया (थाईलैंड, फिलीपीन्स एवं भारत) में स्थित एक नीति शोध संगठन है। फोकस भारत एवं विश्व के दक्षिण भाग (यानी विकासशील देशों) में वैश्वीकरण की राजनीतिक अर्थव्यवस्था और इस प्रक्रिया में अंतर्निहित प्रमुख संस्थाओं के बारे में शोध तथा विश्लेषण प्रदान कर सामाजिक आंदोलनों एवं समुदायों की सहायता करता है। फोकस के लक्ष्य दमनकारी आर्थिक एवं राजनीतिक संरचनाओं की समाप्ति, स्वतंत्र संरचनाओं तथा संस्थाओं का निर्माण, विसैन्यीकरण और शांति को बढ़ावा देना है।

रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफटुंग (आर.एल.एस.)

रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफटुंग (आर.एल.एस.) जर्मनी में स्थित एक फाउंडेशन है, जो दक्षिण एशिया की तरह ही विश्व के अन्य भागों में महत्वपूर्ण सामाजिक विश्लेषण और नागरिक शिक्षा के विषयों पर कार्य कर रहा है। यह एक संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष एवं लोकतांत्रिक सामाजिक व्यवस्था को बढ़ावा देता है। इसका उद्देश्य समाज एवं नीति निर्धारकों के सामने वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करना है। यह शोध संगठनों, स्व–मुक्ति के लिए संघर्ष करने वाले समूहों और सामाजिक कार्यकर्ताओं को उन मॉडल्स के विकास में उनकी पहलों में मदद देता है, जिनमें अत्यधिक सामाजिक एवं आर्थिक न्याय देने की क्षमता है।